

‘भारतीय आधुनिक शिक्षा’ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों तथा शोधकर्ताओं को एक मंच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे-शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याएं, पाठ्यक्रम एवं प्रविधि संबंधी नवीन विकास, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना और शिक्षा के सुधार और विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अकादमिक संपादक

राजरानी

अकादमिक संपादकीय समिति

रंजना अरोड़ा योगेश कुमार
किरन वालिया अनुपम आहूजा
एम.वी. श्रीनिवासन सुनीता कुमारी नागर(जे.पी.एफ.)

प्रकाशन प्रभाग के सदस्य

विभागाध्यक्ष अशोक श्रीवास्तव
मुख्य संपादक (संविदा सेवा) नरेश यादव
सहायक संपादक हेमन्त कुमार
उत्पादन सहायक प्रकाशवीर सिंह

आवरण

साएमा

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
होस्केरे हल्ली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
धनकल बस स्टॉप के सामने
पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

मूल्य

एक प्रति : ₹ 50 वार्षिक : ₹ 200

**परिषद् की 'भारतीय आधुनिक शिक्षा' एवं 'प्राथमिक शिक्षक'
त्रैमासिक पत्रिकाओं के ग्राहकों, पाठकों तथा लेखकों से निवेदन**

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की उपरोक्त दो त्रैमासिक पत्रिकाएं शिक्षा जगत में राष्ट्रीय स्तर तथा राज्य स्तर पर हो रहे अनेक प्रयोगों, अनुसंधानों, कार्यक्रमों व गतिविधियों को पाठकों तक पहुँचाने के सुगम माध्यम हैं। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों, शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को समर्पित है। इनके प्रत्येक संस्करण में ऐसे नवीनतम लेखों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी जाती है जो शैक्षिक नीतियों से संबंधित हों, गुणात्मक सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयोग हों, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने की दिशा में निजी अनुभव अथवा शोध कार्य हों, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के विवरण हों, शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी प्रभावी सामग्री हो। शैक्षिक उपयोगिता से ये पत्रिकाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं तथा परिषद् इन्हें मूल लागत से भी बहुत कम कीमत पर पाठकों को उपलब्ध कराती है।

इन पत्रिकाओं के लिए उत्कृष्ट स्तर के शिक्षाप्रद प्रभावी लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय देने की भी व्यवस्था है। लेख की विषयवस्तु 2500 से 3000 शब्दों में या अधिक टंकित रूप में होना वांछनीय है। यदि लेखक अपने लेखों के साथ सीडी और स्वयं का ई. मेल का पता भेज सकें तो सुविधा होगी। कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजें –

**विभागाध्यक्ष (पत्रिका प्रकोष्ठ), प्रकाशन प्रभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016**

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 के लिए प्रकाशित तथा श्री वृंदावन ग्राफिक्स प्रा. लि., ई-34, सैक्टर-7, नोएडा 201301 (उ. प्र.) द्वारा मुद्रित।



भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 32
अंक 2
अक्टूबर 2011

इस अंक में

संपादकीय		3
विद्यालय, शिक्षक और समाज के संदर्भ में एन.सी.ई.आर.टी. के पचास वर्ष	- ए. के. शर्मा, हिंदी अनुवाद-ऋचा	5
शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं में जेंडर विभेदीकरण : एक आलोचनात्मक अध्ययन	- शारदा कुमारी	25
भारत का राजनीतिक दर्शन	- शंकर शरण	35
शिक्षक-प्रशिक्षकों का सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रति दृष्टिकोण एवं इसकी सुगमता	- राजेन्द्र पाल	41
लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की शैक्षिक विचारधारा	- रश्मि श्रीवास्तव	50
ऐसे करें आत्मनिरीक्षण	- दुर्गेश नन्दिनी	59
मुक्त शिक्षा प्रणाली में गणित विषय की स्व-अनुदेशन सामग्री पर अधिगमकों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन	- सत्यवीर एवं अनिल कुमार	64
आधुनिक संदर्भ में प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन	- भवेश कुमार	76

शिक्षा का अधिकार : एक विश्लेषण	- प्रदीप कुमार सिंह	86
मानवीय मूल्यों से समन्वित अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता	- आशा शर्मा	93
शिक्षक ऐसा हो!	- जितेन्द्र कुमार पाटीदार	103
जेंडर असमानता : एक ऐतिहासिक अध्ययन	- अनुज कुमार	112
क्या अच्छा दिन है?	- सरोज यादव	118

संपादकीय

प्रिय पाठकों, हमें आपको यह सूचित करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् विद्यालयी और शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करते हुए अपने पचास वर्ष पूरे कर चुकी है। 1961 में कई केंद्रीय शैक्षिक संस्थानों को समावेशित कर स्थापित हुई यह संस्था राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी संस्था है जो विद्यालयी शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा दोनों क्षेत्रों में पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यसामग्री के विकास, शोध, प्रशिक्षण तथा विस्तार का कार्य करती है। यही नहीं, व्यावसायिक शिक्षा, समावेशी शिक्षा, शिक्षा में जेंडर के मुद्दे, शैक्षिक प्रौद्योगिकी अर्थात् शिक्षा से जुड़े लगभग हर पहलू पर काम करने वाले अपने संकाय सदस्यों के दल के साथ यह संस्था इन सभी पहलुओं पर राज्यों की क्षमताओं का भी निर्माण और विकास करने का अथक प्रयास करती है। आज इन प्रयासों का ही नतीजा है कि देश के लगभग सभी राज्य एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 का अनुकरण करते हुए पाठ्यचर्या सुधारों की ओर अग्रसर हैं। यही नहीं, यह संस्था मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा समय-समय पर शैक्षिक अभियानों

और योजनाओं की शुरुआत से उनके क्रियान्वयन तक में शामिल रहती है और इसमें भी यह राज्यों को पूरा सहयोग प्रदान करती है।

अपने पाँच क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों यथा अजमेर, भोपाल, मैसूर, भुवनेश्वर और शिलांग; केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, नयी दिल्ली; पण्डित सुन्दर लाल शर्मा केन्द्रीय व्यावसायिक शिक्षा संस्थान, भोपाल; राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नयी दिल्ली के साथ एन.सी.ई.आर.टी. विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा रही है। पचास वर्ष के इस गहन अनुभव को लिए हुए इस संस्था ने आत्मावलोकन करना आरंभ कर दिया है।

भविष्य में विद्यालयी शिक्षा और शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में उभरती चुनौतियों ने भी इसे आगाह किया है कि यह इन क्षेत्रों में नयी सोच और नवाचारों को प्राथमिकता दे ताकि पारंपरिक शैक्षिक प्रविधियों में बदलाव लाकर विविध पृष्ठभूमियों से विद्यालयों में प्रवेश कर रहे बच्चों को स्कूली शिक्षा में सफलता के अनुभव दिए जा सकें।

यह तो था एन.सी.ई.आर.टी के पचास वर्षों का एक संक्षिप्त परिचय। एन.सी.ई.आर.टी. के भूतपूर्व निदेशक प्रोफेसर ए. के. शर्मा ने इस संस्था के स्वर्ण जयंती समारोह के अवसर पर

दिए गए संभाषण के जरिये इस परिचय को एक विश्लेषणात्मक विस्तार दिया। पाठकों के लिए इस संभाषण का हिन्दी अनुवाद इस अंक में शामिल किया गया है।

इस संभाषण के साथ ही प्रस्तुत हैं वैविध्य को समेटे हुए अन्य कई लेख। यथा - 'शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं में जेंडर विभेदीकरण : एक आलोचनात्मक अध्ययन'; 'भारत का राजनीतिक दर्शन'; 'शिक्षक-प्रशिक्षकों का सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रति दृष्टिकोण एवं इसकी सुगमता'; 'लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की शैक्षिक विचारधारा'; 'ऐसे करें आत्मनिरीक्षण'; 'मुक्त शिक्षा प्रणाली में गणित विषय की स्व-अनुदेशन सामग्री पर अधिगमकों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन'; 'आधुनिक संदर्भ में प्राचीन भारतीय

शिक्षा दर्शन'; 'शिक्षा का अधिकार : एक विश्लेषण'; 'मानवीय मूल्यों से समन्वित अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता'; 'शिक्षक ऐसा हो!'; 'जेंडर असमानता : एक ऐतिहासिक अध्ययन' तथा 'क्या अच्छा दिन है?'

हमारे प्रिय लेखकों और पाठकों, एन.सी.ई. आर.टी. के पचास वर्ष पूरे होने के इस मंज़र पर हम आपका आभार प्रकट करते हैं क्योंकि आप भी हमारी इस यात्रा में सदैव शामिल रहे हैं। आपके विचारों ने जो मार्गदर्शन दिया उससे एन.सी.ई.आर.टी. की गुणवत्ता में विस्तृत सुधार हुआ। हम अपेक्षा करते हैं कि भविष्य में भी आप अपने लेखों, विचारों और टिप्पणियों के माध्यम से इस संस्था से जुड़े रहेंगे और शैक्षिक सुधार की प्रक्रिया में हमारे सहयोगी बने रहेंगे।

अकादमिक संपादकीय समिति

विद्यालय, शिक्षक और समाज के संदर्भ में एन.सी.ई.आर.टी. के पचास वर्ष*

ए.के.शर्मा**
हिन्दी अनुवाद - ऋचा***

यह व्याख्यान एन.सी.ई.आर.टी. की स्वर्ण जयंती समारोह की भाषण माला की एक कड़ी है, जो स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में एन.सी.ई.आर.टी. की नेतृत्वकारी भूमिका और इसके उल्लेखनीय योगदान का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत करता है। पिछले पचास वर्षों के दौरान एन.सी.ई.आर.टी. के 'महत्त्वपूर्ण कार्यों' और उपलब्धियों पर प्रकाश डालने के साथ ही यह व्याख्यान इस बात को भी सामने लाता है कि राज्य, विद्यालय, समुदाय और जनता की आशा-आकांक्षाओं को पूरा करने में वह किस तरह असमर्थ रही है। विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में एन.सी.ई.आर.टी. से अपेक्षाएँ इसकी काल्पनिक छवि के साथ इसकी अवचेतन इच्छा में समाहित हैं।

इस व्याख्यान का शीर्षक है "विद्यालय, शिक्षक और समाज के संदर्भ में एन.सी.ई.आर.टी. के पचास वर्ष" और यह किसी भी राष्ट्र के जीवन में विद्यालय, शिक्षक और समाज-इन तीन घटकों के अंतःसंबंध अथवा सहजीवन पर पुनर्विचार करता है। स्कूली शिक्षा बच्चों के प्रारंभिक वर्षों के रचनात्मक विकास को परिभाषित करती है जिससे होकर वे जीवन के व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। व्याख्यान में सामाजिक असमानता को यथासंभव कम करने में विद्यालयी व्यवस्था के संदर्भ में पहुँच, साम्य तथा गुणवत्ता के सरोकारों और इन सरोकारों के बहुविध आयामों की चर्चा

* यह व्याख्यान एन.सी.ई.आर.टी. स्वर्ण जयंती भाषण माला के अंतर्गत डॉ. ए. के. शर्मा द्वारा 11 जुलाई, 2011 को एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली में दिया गया।

** एन.सी.ई.आर.टी. के भूतपूर्व निदेशक

*** शोध छात्रा, सी.आई.ई., दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-7

की गई है। क्षेत्रीय और वैश्विक जरूरतों के लिए कुशल कार्यदल (Workforce) के निर्माण में, उच्चतर शिक्षा में अधिकाधिक छात्रों को प्रवेश दिलाने में, व्यक्तिगत तथा घरेलू जीवन में उत्पादकता को बढ़ाने में और देश के आर्थिक विकास में माध्यमिक शिक्षा की भूमिका पर भी विचार किया गया है।

माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता, शिक्षा के इस चरण में प्रदत्त पाठ्यवस्तु (कंटेंट) की गुणवत्ता पर निर्भर है और इस बात पर भी कि उसे किस तरह पढ़ाया जाता है और उसका मूल्यांकन किस तरह किया जाता है, साथ ही वह शिक्षकों की संप्रेषित करने की योग्यता पर भी निर्भर करती है। व्यावसायिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा का एक हिस्सा बनने में सफल नहीं हो सकी है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक कि इस संदर्भ में कोई भिन्न अथवा क्रांतिकारी विचार परिवर्तन नहीं किया जाता। माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में कंप्लीमेंट्री (सहयोगी) विकल्प के रूप में मुक्त और दूरस्थ शिक्षा की भूमिका पर भी विचार किया गया है। समाज के वंचित वर्गों की शिक्षा, लिंग-असमानता और शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकसित बच्चों के लिए पाठ्यचर्या संबंधी चुनौतियाँ आदि के सरोकार भी स्कूली शिक्षा के लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं।

सार्वजनिक परीक्षा को धीरे-धीरे समाप्त करने के संदर्भ में बोर्ड की नयी जिम्मेदारियाँ, ऐसे मुद्दे हैं जिन पर विश्वस्त चर्चा की जरूरत है।

आदर्श गुरु और प्रोफेशनल टीचर में किस तरह सामंजस्य बैठाया जाय यह प्रश्न शिक्षक निर्माण के सभी प्रतिमानों पर फिर से गंभीर विचार करने की जरूरत पैदा करता है। शिक्षकों के लिए एक आलोचनात्मक प्रगतिशील आचार संहिता की जरूरत है ताकि वे छात्रों के भीतर जो भी सर्वोत्तम छुपा है, उसे विकसित करने, उसे बाहर लाने की कोशिश कर सकें; न कि केवल उसकी गलतियाँ गिनाने की। अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के बजाय शिक्षक को जनतांत्रिक व्यवहार करना चाहिए, जहाँ छात्र और शिक्षक सामूहिक रूप से नीतिगत कार्यप्रणाली (Ethical Modus Operandi) का निर्माण और निर्वाह करें। इस मानववादी अंतर्दृष्टि में एक सच्चा शिक्षित समुदाय पल्लवित, पुष्पित हो सकता है जो कि उस मार्केट मॉडल के विपरीत है जहाँ मानक और प्रतिस्पर्धा व्यक्ति को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर देते हैं। शिक्षक शिक्षा के क्रांतिकारी रूपांतरण के लिए गंभीर प्रयास की फ़ौरी जरूरत है। स्कूल, शिक्षक और समाज का यह त्रिकोणीय निहितार्थ उन विविध मुद्दों का ढाँचा निर्मित करता है जो इस व्याख्यान में प्रस्तुत किए गए हैं।

मित्रों, मैं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् का आभारी हूँ जिसने मुझे एन.सी.ई.आर.टी. की स्वर्ण जयंती पर आयोजित भाषणमाला 2011 के अंतर्गत व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया है। मेरी समझ से यह भाषणमाला का तीसरा व्याख्यान है। मैंने इस

आमंत्रण को विनम्रता से स्वीकार किया है क्योंकि मैं इस बात के प्रति सचेत हूँ कि मैं शिक्षा क्षेत्र का केवल एक कार्यकर्ता भर हूँ, न कि कोई बड़ा विद्वान। शायद यह आमंत्रण मुझे इसलिए मिला है क्योंकि लगभग पच्चीस वर्षों तक मैं एन.सी.ई.आर.टी. परिवार का सदस्य रहा हूँ। इस व्याख्यान में मैं जो विचार व्यक्त करने जा रहा हूँ वह यहाँ के मेरे अनुभव और समझ पर आधारित हैं, जो देश के संदर्भ में सामान्य रूप से शिक्षा और विशेष रूप से स्कूली शिक्षा की स्थिति तक सीमित हैं। इस व्याख्यान का केंद्र बिंदु एन.सी.ई.आर.टी. की भूमिका है जो उसने प्रारंभ से अब तक निभाई है, और विद्यालय, शिक्षक तथा इनके सामाजिक प्रभाव से जुड़े वे सरोकार भी हैं जिनके प्रति यह संस्था जवाबदेह रही है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के जीवन में पचास वर्ष का समय एक सुदीर्घ काल है जिसमें इसकी उपलब्धियों का लेखा जोखा लिया जा सकता है; स्कूली शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए उसने जो नीतियाँ निर्धारित-प्रस्तावित की हैं उनका आकलन भी कर सकते हैं। इसलिए यह आत्मनिरीक्षण का भी समय है। इस आकलन-मूल्यांकन से उन लोगों को निश्चित रूप से गर्व की अनुभूति होगी जो लोग अतीत में इस संगठन के योगदान से जुड़े रहे हैं। यह उन कमियों और सीमाओं को पहचानने का भी अवसर प्रदान करेगा जिन्हें भविष्य में चुनौतियों के रूप में बदला जा सकता है।

एन.सी.ई.आर.टी. : अतीत, वर्तमान और भविष्य

इस तरह के अवसर पर कुछ संस्मरणों को भुला पाना कठिन है। एन.सी.ई.आर.टी. बुनियादी रूप से शिक्षा के क्षेत्र में, पेशेवरों की एक अकादमिक संस्था है जिसमें शोधार्थी और शिक्षक काम करते हैं। इसके मुख्य कार्यों में शामिल है 'सेवा, सुझाव, सहायता और विस्तार-प्रसार' जो इसके विवरण पत्र (Memorandum of Association, MOA) में दिए गए हैं। सरकारी विभागों की तरह एन.सी.ई.आर.टी. के पास कोई कार्यकारी (एक्जीक्यूटिव) शक्ति नहीं है और न ही यह अनुदान बाँटने वाली कोई एजेंसी है। इसे व्यापक रूप से एक राष्ट्रीय संस्थान के रूप में जाना जाता है जो विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में नेतृत्वकारी भूमिका निभा रही है। एन.सी.ई.आर.टी. के जन्म और पचास वर्षों में इसकी भूमिका को इसी पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है।

छठे दशक के उपरांत एन.सी.ई.आर.टी. का बहुविध विकास हुआ-अनुभव और विशेषज्ञता दोनों के मामलों में। शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में इसने उल्लेखनीय योगदान किया; कभी-कभार वह अपने को पूरी तरह से तैयार नहीं कर पायी और कभी उसके पास पर्याप्त संसाधन भी नहीं थे। फिर भी, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इन वर्षों में उसे अच्छे कार्यों और उपलब्धियों के लिए पहचान मिली। इसके साथ ही वह राज्य, विद्यालय, समुदाय और जनता की आशा-आकांक्षाओं पर पूरी तरह से खरी नहीं

उतर सकी। यह स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण बदलाव लाने में एन.सी.ई.आर.टी. की नेतृत्वकारी भूमिका की अपेक्षा का संकेत है और ये अपेक्षाएँ न केवल एन.सी.ई.आर.टी. की काल्पनिक छवि को दर्शाती हैं बल्कि उसकी अवचेतन आकांक्षा को भी दर्शाती हैं। उसकी यह छवि उनके अकादमिक समुदाय के अथक एवं समर्पित प्रयासों से उभरी है और हमें निश्चय ही उन सभी पर गर्व है।

अपने पहले दशक में एन.सी.ई.आर.टी. ने स्वास्थ्य शिक्षा कार्य (HEW) से संबंधित परियोजनाओं पर महत्वपूर्ण काम किया। इस कार्य ने इसकी पहचान विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रमुख शोध संगठन के रूप में स्थापित करने में मदद की। ढाई से छह वर्ष के बच्चों के विकासात्मक प्रतिमानों ने पूर्व विद्यालयी शिक्षा पर आगे कार्य करने की नींव रखी, जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में आरंभिक शैशवकालीन देखभाल और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) के रूप में पहली बार संदर्भित किया गया और अब संविधान के 45वें संशोधित अनुच्छेद में उसे शामिल किया गया है। चिल्ड्रेन मीडिया लेबोरेट्री (सी.एम.एल.) और पूर्व विद्यालयी शिक्षा पर विकासात्मक फ़ोकस करने की स्वीकृति ने आज आरंभिक शैशवकालीन देखभाल और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) को आरंभिक शैशवकालीन देखभाल और विकास (ई.सी.सी.डी.) के रूप में ग्रहण करने की सोच को जगह दी है।

भारत सरकार द्वारा गठित शिक्षा आयोगों की सिफ़ारिशों को लागू करने में एन.सी.ई.आर.टी.

हमेशा आगे रही है। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) की रिपोर्ट से क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों (आर.सी.ई.) का जन्म हुआ जिससे बहुउद्देश्यीय उच्च माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रत्येक क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान के साथ प्रयोगशाला के रूप में एक बहुउद्देश्यीय निदर्शन विद्यालय (डी.एम. स्कूल) संलग्न हुआ और पहली बार अध्यापक शिक्षा में सामान्य और टेक्नोलॉजी, कृषि, वाणिज्य, गृह विज्ञान तथा फाइन आर्ट्स से संबंधित व्यावसायिक क्षेत्रों में विशिष्ट समन्वित कार्यक्रमों के विकास का प्रयास आरंभ हुआ। कुछ योजनाकर्ताओं की गहरी अंतर्दृष्टि के कारण ही एन.सी.ई.आर.टी. व्यावसायिक शिक्षा की ठोस परिकल्पना की नींव रखने में कामयाब हुई।

शिक्षा आयोग (1964-66) की मुख्य सिफ़ारिशों के बाद प्रथम पाठ्यचर्याओं की रूपरेखा सामने आई जिसे हम 'करीक्यूलम फॉर टेन इयर स्कूल' (1975) और 'उच्च माध्यमिक शिक्षा और इसका व्यावसायीकरण' (1976) के नाम से जानते हैं। इसके उपरान्त एन.सी.टी.ई. (जो उस समय एन.सी.ई.आर.टी. का अभिन्न अंग थी) ने 'क्लासिक टीचर एजुकेशन करीक्यूलम - ए फ्रेमवर्क' का निर्माण किया। इन ऐतिहासिक दस्तावेजों ने पाठ्यचर्या में मुख्य नीतिगत सुधार किए जो आगे की पाठ्यचर्या रूपरेखाओं के लिए किए गए प्रयासों की जीवनरेखा बन गए जैसे कि 1988, 2000, 2005 में विद्यालयी शिक्षा के लिए तैयार की गई पाठ्यचर्या की रूपरेखाएँ और 'क्वालिटी टीचर एजुकेशन फ्रेमवर्क' (1988) और 'नेशनल करीक्यूलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन'

(2009) जो कि वैधानिक (Statutory) एन. सी.टी.ई. द्वारा बनाया गया।

एन.सी.ई.आर.टी. ने 1965 में 'प्रतिभा खोज' का एक अग्रगामी (Pioneer) कार्यक्रम चलाया। यह देश में ऐसे प्रतिभाशाली युवाओं की खोज की पहचान का पहला प्रयास था जो बुनियादी विज्ञानों और गणित में शिक्षा प्राप्त करके आगे चलकर इंजीनियरिंग और टेक्नोलॉजी में विकास की नींव रख सके। 'विज्ञान प्रतिभा खोज परीक्षा' की रूपरेखा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं की रूपरेखा की जनक बन गई।

सातवें दशक के प्रारंभ में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में तकनीकी (Technology) के इस्तेमाल का प्रथम प्रयत्न करने का श्रेय सेटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट (SITE) को जाता है, और इसकी पाठ्यवस्तु और प्रक्रिया को निर्धारित करने में एन.सी.ई.आर.टी. के शैक्षिक टेक्नोलॉजी केंद्र (सी.ई.टी.) की भूमिका प्रमुख थी। इसी भूमिका पर आगे चलकर केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (सी.आई.ई.टी.) का निर्माण हुआ।

एन.सी.ई.आर.टी. को इस बात के लिए भी श्रेय दिया जा सकता है कि वह पहली संस्था है, जिसने जनगणना आधारित अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षणों (AIESs) का संस्थानीकरण करते हुए शिक्षा तंत्र को एक डाटाबेस प्रदान किया ताकि नीति निर्माण में मदद मिल सके। योजना आयोग के आदेश से डाटा बेस बनाते हुए आज हम आठवाँ अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण पूरा करने की ओर उन्मुख हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने अध्यापक शिक्षा में संपूर्ण बदलाव की सिफारिश की थी जिसके परिणामस्वरूप अध्यापक शिक्षा को पुनर्गठित तथा पुनर्निर्मित करने की परियोजना का विकास हुआ। एन.सी.ई.आर.टी. और न्यूपा के ज़रिए 'जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान' (DIETs), 'शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय' (CTEs) और 'उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान' (IASEs) के अवधारणात्मक दस्तावेजों का विकास हुआ।

पहली कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक संपूर्ण विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों के क्षेत्र में पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में एन.सी.ई.आर.टी. का योगदान सर्वविदित है। इन पाठ्यपुस्तकों में पाठ्यवस्तु की गुणवत्ता एवं उसके अनुकूल शिक्षाशास्त्र की जानकारी ने एन.सी.ई.आर.टी. को बहुत ख्याति दिलाई है। पाठ्यपुस्तक निर्माण की इस पूरी प्रौद्योगिकी, जिसने एन.सी.ई.आर.टी. को एक बड़ा नाम दिलाया है, की विभिन्न प्रक्रियाओं के दस्तावेजीकरण किए जाने की ज़रूरत है। ताकि प्रत्येक राज्य में राष्ट्रीय स्तर की प्रतिभा का विकास हो सके जो अपने क्षेत्रीय संदर्भों को ध्यान में रखते हुए, क्षेत्रीय विशेषज्ञों की भागीदारी से समान गुणवत्तापूर्ण पाठ्य-सामग्री डिज़ाइन कर सके।

ऊपर बताए गए उद्धरण उन महत्वपूर्ण पहलों की केवल एक झलक है जिनकी शुरुआत करने का श्रेय एन.सी.ई.आर.टी. को जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में एन.सी.ई.आर.टी. ने जो महत्वपूर्ण बहुविध भूमिका निभाई है उसे आगे बढ़ाने की ज़रूरत है, अपनी सोच को आगे

बढ़ाने और भविष्य में झाँकने की ज़रूरत है। उसे पिछले कार्यों से संतुष्ट होकर बैठ जाना नहीं है, उसे न केवल अतीत से पूर्वाग्रह रखना है और न ही केवल वर्तमान समय में शिक्षा जगत की अनगिनत व जटिल समस्याओं का विश्लेषण और समाधान निकालने में लगे रहना है। उसे एक राष्ट्रीय 'थिंक टैंक' की अपनी भूमिका का नवीकरण करने के सामर्थ्य को और बढ़ाना है क्योंकि इसी भूमिका के आधार पर वह केंद्र एवं राज्य सरकारों को नीति एवं कार्यक्रमों के निर्धारण में 'सलाह एवं सहायता' प्रदान करने में समर्थ हो सकती है। गुणवत्तापूर्ण शैक्षणिक विकास के समक्ष आज जो भी प्रश्न, समस्याएँ एवं मुद्दे हैं उन पर एन.सी.ई.आर.टी. को उद्देश्यपरक बहस एवं परिचर्चा आयोजित करने की संस्कृति को और अधिक उत्साह के साथ आगे बढ़ाने के लिए हमेशा सचेत रहना चाहिए। उसे यह भी ध्यान रखना होगा कि वह किस तरह राज्यों को गंभीर और वास्तविक शैक्षिक शोध करने वाले संस्थान बनाने में मदद कर सकती है। ऐसा करने से राज्य स्तरीय शिक्षा संस्थानों का विकास तेज गति से हो सकेगा। इसलिए इस समय एन.सी.ई.आर.टी. को आत्मनिरीक्षण करने की भी आवश्यकता है कि उसके प्रयास सही दिशा में जा रहे हैं या नहीं। और यदि परिस्थितियाँ माँग करती हैं तो प्रयासों में आवश्यक सुधार या फेर बदल किया जा सके। जो भी हो, कुछ कार्य एन.सी.ई.आर.टी. ने अपने हाथ में ऐसे भी लिए या उसे सौंपे गए जो इसकी प्रशिक्षण एवं शोध

परक भूमिका से सीधे-सीधे जुड़े नहीं थे और जिन्हें पूरा करने में समय और शक्ति की बर्बादी भी हुई और साथ ही उनसे एन.सी.ई.आर.टी. के बुनियादी कार्यों में विशेष योगदान भी नहीं हो सका। वैश्विक शैक्षणिक परिदृश्य में निरंतर बदलाव हो रहा है; और भारत इसका अपवाद नहीं है। विद्यालयी शिक्षा के इस बदलते परिवेश के प्रति जागरूक रहने और अपनी भूमिका का समुचित निर्वाह करने में अपने आपको सक्षम बनाने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. को शैक्षिक समस्याओं का हल खोजने के अपने तरीकों में निरंतर बदलाव लाते रहना होगा।

आगे बढ़ने से पहले मैं कुछ ऐसे सवालों की चर्चा करना चाहता हूँ जो एन.सी.ई.आर.टी. के संभावी भविष्योन्मुख सरोकारों के लिए प्रासंगिक हैं।

- (i) एन.सी.ई.आर.टी. के एम.ओ.ए. (MOA) में लिखा है... "शिक्षा, विशेषकर विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में ..., मंत्रालय को सहायता एवं सलाह देना।" एन.सी.ई.आर.टी. को शिक्षा नीतियों और कार्यक्रमों को बनाने की प्रक्रिया में केंद्र व राज्य सरकारों को सलाह देनी चाहिए न कि केवल इनको लागू करने के संदर्भ में। इससे एन.सी.ई.आर.टी. की नेतृत्व क्षमता और मार्गदर्शक भूमिका उभरकर सामने आ सकती है और इसके कार्यक्रमों का फोकस बढ़ सकता है ताकि नीति प्रतिपादन में उसकी

पहल उसकी कार्यनीति में अच्छी तरह समाहित हो जाए।

- (ii) एन.सी.ई.आर.टी. कुछ संस्थानों का संयुक्त रूप है जिसमें आठ संघटक इकाईयाँ हैं। जो इस प्रकार हैं : राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान (एन.आई.ई.), नयी दिल्ली, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (आर.आई.ई.) जो अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर, मैसूर और शिलांग में स्थित है; केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (सी. आई.ई.टी.) नयी दिल्ली और पंडित सुंदरलाल शर्मा केंद्रीय वोकेशनल शिक्षा संस्थान (पी.एस.एस.सी.आई.वी.ई.), भोपाल और (पहले कुछ फील्ड ऑफिस भी)। एन.आई.ई. और एन.सी.ई.आर.टी. एक दूसरे के पर्याय बन गए हैं। जबकि प्रत्येक संघटक संस्थान स्वतंत्र रूप से एक पेशेवर व्यक्ति की अध्यक्षता में चल रहा है, तब एन.आई.ई. का अध्यक्ष कौन है? एन.सी.ई.आर.टी. को एक प्रशासनिक एवं नीति-निर्धारक सचिवालय के रूप में कार्य करना चाहिए जिसमें प्रत्येक संघटक संस्थान की एक अलग पहचान हो। एन.सी.ई.आर.टी. की मुख्यधारा से विभिन्न संघटकों के अलगाव को पाटना चाहिए।
- (iii) एन.सी.ई.आर.टी. के संघटकों/विभागों में यथासंभव आंतरिक प्रतिनियुक्ति की एक प्रणाली विकसित की जा सकती है क्योंकि इससे संकाय के संसाधनों का संपूर्ण उपयोग शिक्षा के विभिन्न मुद्दों पर विशेषज्ञता की व्यापक परिधि प्रदान करने में हो सकता है।
- (iv) एन.सी.ई.आर.टी. में अकादमिक ओहदे (पद) आवश्यक विशेषज्ञता के मुताबिक होने चाहिए। काउंसिल द्वारा किए जाने वाले अनुसंधान और विकास प्रशिक्षण तथा प्रसार कार्यों की विशेषताओं के संदर्भ में वर्तमान स्थिति की पुनः समीक्षा की जरूरत है।
- (v) अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण की समय सीमा रेखा (Dateline) पंचवर्षीय योजना निर्धारण के अनुसार होनी चाहिए और योजना आयोग में उसका डाटा उपलब्ध होना चाहिए। नयी तकनीकी का उपयोग डाटा बेस के निर्माण में मदद कर सकता है ताकि समय पर उसे उपलब्ध कराया जा सके और योजनाओं में उसका इस्तेमाल किया जा सके।
- (vi) प्रतिभा की खोज सही दिशा और सही तरीके से होनी चाहिए। जिससे कि प्रतिभाओं का वांछित पोषण हो सके (वास्तव में प्रतिभा पोषण की दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है)। हम प्रतिभा की खोज के बुनियादी लक्ष्य से भटक गए हैं। शायद हम अन्य क्षेत्रों में भी वास्तविक प्रतिभाओं की खोज करना चाहते हैं। हमें प्रतिभा की पहचान और उसके पोषण के तरीके विकसित करने की जरूरत है।

- (vii) वर्तमान समय में प्रौद्योगिकी के प्रयोग से शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में अनेक बदलाव आए हैं। इनकी मदद से पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया को और सुदृढ़ बनाया जा सकता है। एन.सी.ई.आर.टी. को पाठ्यचर्या निर्माण और शैक्षिक तथा शिक्षाशास्त्रीय क्रियाकलापों के अभ्यासों के बीच अधिक सहक्रिया और सामंजस्य कायम करने की ज़रूरत है। विद्यालयी शिक्षा में यह सामंजस्य शिक्षाशास्त्रीय व्यवहार में पूरी तरह बदलाव ला सकता है। इस संदर्भ में सी.आई.ई.टी. की भूमिका महत्वपूर्ण है। दूरदर्शन और आकाशवाणी के लिए उसे स्वतंत्र रूप से शैक्षिक कार्यक्रमों का निर्माण करना चाहिए। वहीं दूसरी ओर अन्य दृश्य-श्रव्य सामग्री के निर्माण के मामले में भी उसका प्रधान उद्देश्य एन.सी.ई.आर.टी. के क्रियाकलापों को समृद्ध करने का होना चाहिए और उसे विद्यालयी शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों में तकनीकी के इस्तेमाल को बढ़ावा देना चाहिए।
- (viii) एन.आई.ई. परिसर में शिक्षण कार्यक्रमों की कमी है। यहाँ ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन (ज़रूरी नहीं कि वे कोई डिग्री देने के लिए आयोजित किए जाएँ) आगे आने वाले समय में विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में एन.सी.ई.आर.टी. के योगदान को और मज़बूत कर सकता है।

विद्यालयी शिक्षा का परिदृश्य

एन.सी.ई.आर.टी. के भावी सरोकारों के संदर्भ में इस समय विद्यालयी शिक्षा के परिदृश्य पर एक विहंगम दृष्टि डालना प्रासंगिक होगा। विद्यालयी शिक्षा उस प्रक्षेप-पथ को परिभाषित करती है जिसमें एक बच्चा अपने विकास के प्रारंभिक वर्षों से होकर अपने चुने हुए व्यावसायिक जीवन में प्रवेश करता है। विद्यालय मानव व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों की पहचान करके शिक्षा की पाठ्यवस्तु एवं प्रक्रिया के द्वारा उनका पोषण करता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के भावी जीवन के परिणाम इन्हीं आयामों पर निर्भर करते हैं। आवश्यकतानुसार विद्यालयों की उपलब्धता का प्रश्न, समाज के सभी वर्गों के लिए शिक्षा के समान अवसर प्रदान करना, स्कूलों में समुचित संसाधन का होना, प्रशिक्षित शिक्षक और प्रभावशाली शिक्षाशास्त्र का होना ताकि वांछित परिणाम मिल सकें आदि ऐसे सरोकार हैं जिनका ध्यान रखना प्रत्येक शिक्षा तंत्र के लिए अनिवार्य है। एन.सी.ई.आर.टी. से अपेक्षा की जाती है कि वह शोध और अन्य अध्ययनों के ज़रिये स्कूली तंत्र की ज़मीनी वास्तविकताओं को समझते हुए पहुँच, समानता और गुणवत्ता के मुद्दों को व्यावहारिक रूप से संबोधित करने का प्रयास करे। एन.सी.ई.आर.टी. एकमात्र ऐसी संस्था है जो बच्चे के विकास के सभी आयामों से संबंधित शैक्षिक सरोकारों को संबोधित करती है।

कुछ अन्य सरोकार भी हैं। भारत की विद्यालयी शिक्षा में पर्याप्त भेदभाव है। अमीरों और कुलीनों के बच्चे यहाँ अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त कर

सकते हैं, निजी और 'पब्लिक' स्कूलों में जा सकते हैं जबकि बहुसंख्यक गरीबों जिनमें अल्पसंख्यक एवं हाशिये के लोग भी शामिल हैं, के बच्चे उन सरकारी स्कूलों में जाते हैं जहाँ की शिक्षा की गुणवत्ता कमतर समझी जाती है। मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि पब्लिक स्कूलों में तथाकथित 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा' दी जाती है क्योंकि इस पक्ष पर वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किए जाने की ज़रूरत है, लेकिन आम जन के दिमाग में यही बात बैठी है। इस प्रकार समाज का वर्ग-विभाजन विद्यालयी तंत्र में विभेद के रूप में प्रतिबिंबित होता है। सामाजिक असमानता को बनाये रखने और बढ़ाने में यह बहुत बड़ा कारक है। विद्यालयी शिक्षा में सुधार के लिए यह एक बहुत बड़ा सरोकार है जिस पर गंभीरता से ध्यान दिया जाना चाहिए। भारत में शिक्षा से संबंधित एक अन्य व्यवस्थागत सरोकार (Systemic Concern) वैश्वीकरण और उदारीकरण से पैदा हुआ है जिसने विद्यालयी शिक्षा की बुनियादी प्रकृति एवं अर्थ को ही बदल डाला है। 'अंतर्राष्ट्रीय', 'वैश्विक' और 'विश्व' स्कूलों के पीछे जो दर्शन काम कर रहा है उस पर भी अध्ययन करने की ज़रूरत है। एन.सी.ई.आर.टी. इन मुद्दों पर गंभीर विमर्श चला सकती है।

जहाँ तक विद्यालयी सुविधाओं का सवाल है 'धनी' और 'निर्धन' के बीच की खाई को पाटा जाना चाहिए। किसी भी समाज के सामंजस्यपूर्ण विकास के सामाजिक फ़ायदे को ध्यान में रखते हुए विद्यालयी शिक्षा को भी समावेशी होना

चाहिए। शैक्षिक बहिष्करण व्यक्ति को आजीविका, ज्ञान, सामाजिक प्रतिष्ठा, गरिमा आदि के बहिष्करण की ओर ले जाता है और वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21-ए के अनुसार यह मानवीय अधिकारों का हनन है। इस समस्या पर विचार करने की ज़रूरत है और इस पर विमर्श चलाने में एन.सी.ई.आर.टी. नेतृत्वकारी भूमिका अदा कर सकती है। हमारे विद्यालयों में बहिष्करण के दो रूप मिलते हैं। पहला रूप सामाजिक बहिष्करण का है, जिसमें सामाजिक और आर्थिक रूप से दलित, पिछड़े वर्गों के बच्चे हैं जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक और अन्य वर्गों के बच्चे शामिल हैं। दूसरे प्रकार के बहिष्करण में विभिन्न प्रकार के विक्षिप्त बच्चे आते हैं। समतावादी समाज के निर्माण के लिए समावेशी शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। इस दिशा में प्रयत्न हुए हैं, यद्यपि वह पर्याप्त नहीं हैं, और उन्हें राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एण्ड कम्पलसरी एजुकेशन (RTE) एक्ट, 2009 नामक कानून में शामिल किया गया है जो कि एक स्वागतयोग्य कदम है।

आरटीई एक्ट इस बात के लिए सुरक्षा प्रदान करता है कि प्रत्येक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। राज्य, शिक्षक, परिवार और समुदाय सबको एक साथ मिलकर इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनना है। दुनिया के कुछ देशों ने सभी बच्चों के लिए मुफ्त और बालक-अनुकूल (Child Friendly) शिक्षा का प्रावधान किया है ताकि

सभी बच्चों का यथासंभव पूर्ण विकास हो सके। पिछले कुछ दशकों में भारतीय शिक्षा पद्धति का योगदान यह है कि स्कूलों में बच्चों, विशेषकर लड़कियों की संख्या तेजी से बढ़ी है। फिर भी असमानता अब भी बरकरार है क्योंकि बहुत सारे बच्चे अभी भी प्रारंभिक शिक्षा से वंचित हैं। एक आकलन के अनुसार भारत में अब भी 190 मिलियन बच्चों को गुणवत्तायुक्त तथा बाल-अनुकूल शिक्षा के प्रावधान के लिए और अधिक निवेश करने की ज़रूरत है। आरटीई (RTE) एक्ट वंचित समूहों जिनमें बाल मजदूर, बाहरी देशों से आए बच्चे और ऐसे बच्चे जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषायी तथा जेंडर या ऐसे अन्य कारणों की दृष्टि से पिछड़े हैं, उन तक पहुँचने का एक ठोस प्लेटफॉर्म प्रदान करता है। यह स्कूल मैनेजमेंट (विद्यालयी प्रशासन) से गुणवत्ता के साथ समानता मुहैया कराने की मांग करता है, उदाहरण के लिए शारीरिक दंड पर प्रतिबंध लगाकर क्लासरूम भय और चिंता से मुक्त कराना और जहाँ तक संभव हो सके मातृभाषा में शिक्षा देना। एन.सी.ई.आर.टी.द्वारा इन मुद्दों और सरोकारों को शोध एवं अन्य अध्ययनों के ढाँचे में डालकर इन पर गंभीरता से कार्य करने की ज़रूरत है। यह भी उल्लेखनीय है कि छः वर्ष की उम्र में शिक्षा की शुरुआत करने से विद्यालयी शिक्षा की तैयारी में विलम्ब हो सकता है। अतः पूर्व विद्यालयी शिक्षा में निवेश एक अच्छी रणनीति है। इसके अलावा विद्यालयों से बाहर के लाखों बच्चों को उनकी उम्र के

अनुसार कक्षाओं में दाखिल करने और उन्हें विद्यालयों में बनाये रखने के लिए प्रयास करने की ज़रूरत है। यह अपने आप में एक बहुत बड़ी चुनौती है जो शैक्षिक प्रक्रिया में लचीलेपन और नवाचार की अपेक्षा करती है। सर्वशिक्षा अभियान की उपलब्धियों के आधार पर आरटीई एक्ट के साथ उसका सामंजस्य देश के सभी विद्यालयों में बनाना होगा। इस प्रकार सभी बच्चों के लिए प्रारंभिक शिक्षा के मिलेनियम डेवलपमेंट गोल (MDG) को प्राप्त करने में 2015 तक भारत को एक वैश्विक नेता के रूप में उभरना है। यह कार्य पूरा करना इतना आसान नहीं है। इस विषय पर एन.सी.ई.आर.टी. आगे भी विमर्श चलाती रहेगी।

बच्चे की (उम्र) परिभाषा और शिक्षा का अधिकार

शिक्षाशास्त्रियों तथा सिविल सोसायटी (Civil Society) ने यह चिंता व्यक्त की है कि आरटीई एक्ट में बालक की उम्र सीमा के प्रति न्याय नहीं किया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 ए के तहत बच्चे (उम्र) को परिभाषित किया गया था। सरकार के इस निर्णय को संसद की स्वीकृति लेनी पड़ी। बुनियादी अनुच्छेद 45 तथा उन्नीकृष्णन फ़ैसले-दोनों में 0-6 वर्ष का आयु वर्ग शामिल है। द जुवेनिल जस्टिस एक्ट 18 वर्ष तक की उम्र के बच्चे को बच्चे के रूप में परिभाषित करता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के बच्चों के अधिकार के कन्वेंशन (UNCRC) में बच्चे की उम्र को

0-18 आयु वर्ग तक मान्यता दी गई है जिस पर भारत ने भी हस्ताक्षर किए हैं। सैद्धांतिक रूप में जुवेनिल जस्टिस एक्ट, यू.एन.सी.आर.सी. (UNCRC) तथा अनुच्छेद 21(जीवन का अधिकार) का हवाला देते हुए आरटीई एक्ट के तहत बच्चे की उम्र को 0-18 आयु वर्ग में परिभाषित किया जाना चाहिए था। परंतु मजबूरी बताते हुए यह एक्ट 6-14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों पर ही लागू होता है, जैसा कि अनुच्छेद 21ए में है। इस एक्ट में संशोधन करके इसे 0-18 वर्ष की उम्र सीमा तक लागू करने के लिए अधिकाधिक जन-समर्थन जुटाने की आवश्यकता है। यदि ऐसा हो सका तब न केवल ईसीसीई (ECCE) अपितु सेकेंडरी और हायर सेकेंडरी एजुकेशन भी यूनीवर्सल सेकेंडरी एजुकेशन के तहत शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अंग के रूप में शामिल हो जाएंगे।

सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा की ओर

शिक्षा के अधिकार अधिनियम और सर्वशिक्षा अभियान को सफलतापूर्वक लागू करने से माध्यमिक शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ेगा-पहुँच, समानता तथा गुणवत्ता के मामले में। वर्तमान में सिर्फ पचास प्रतिशत बच्चे ही कक्षा नौ में प्रवेश कर पाते हैं। इस स्थिति से निपटने के लिए हमें आशावादी नज़रिया अपनाना चाहिए ताकि सौ प्रतिशत बच्चे माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच सकें। सामान्य शिक्षा की अवधारणा पर भी नए सिरे से विचार करने की ज़रूरत है। सामान्य शिक्षा की पाठ्यवस्तु को क्या हमें दसवीं कक्षा तक ही सीमित रखना चाहिए अथवा उसे बारहवीं कक्षा

तक विस्तृत करना चाहिए। वैश्विक रूप से विद्यालयी शिक्षा 12 वर्षों की होती है। बच्चों का अधिकार 12 वर्ष की विद्यालयी शिक्षा तक बढ़ाने के लिए यह विचार करना होगा कि क्या यह मुफ्त तथा अनिवार्य रूप से दी जाए। शुरुआत में वह मुफ्त हो सकती है। क्या आरटीई एक्ट में निहित प्रावधान 12 वर्ष की शिक्षा के लिए भी उतने ही वैध हैं? कौन से प्रावधान वैध रहेंगे, कौन से नए प्रावधान जोड़े जाने चाहिए? इस विषय पर एन.सी.ई.आर.टी. एक भावी कानून की रूपरेखा बना सकती है।

प्रारंभिक शिक्षा के विपरीत माध्यमिक शिक्षा मानव-अधिकारों के सार्वभौम घोषणापत्र का हिस्सा नहीं थी। विश्व शिक्षा रिपोर्ट 2000 यह बताता है कि मानव अधिकारों की घोषणा को बनाते समय प्रारंभिक शिक्षा के बाद की शिक्षा का उल्लेख उच्च शिक्षा के रूप में किया गया है। माध्यमिक शिक्षा का प्रथम उल्लेख यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन अगेन्स्ट डिस्क्रिमिनेशन इन एजुकेशन (United Nations Convention against Discrimination in Education) में मिलता है- “स्टेट पार्टियों को माध्यमिक शिक्षा को उसके विभिन्न रूपों में सामान्य रूप से सभी के लिए उपलब्ध कराना चाहिए”। यूएनसीआरसी (UNCRC) सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा को भी इसमें शामिल करता है। माध्यमिक शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच के मामले में ये वक्तव्य वैश्विक नीति परिवर्तन के स्पष्ट संकेत देते हैं।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) के तहत माध्यमिक शिक्षा

के व्यापक उद्देश्य निर्धारित किए हैं जिसमें उसने प्रत्येक आबाद इलाके में 5 किलोमीटर की दूरी पर एक माध्यमिक स्कूल, 7-10 किलोमीटर की दूरी पर एक उच्चतर माध्यमिक स्कूल खोलने की योजना बनाई है, ताकि 2020 तक माध्यमिक शिक्षा की 'सार्वभौमिक पहुँच' तथा 'सार्वभौमिक ठहराव' संभव हो सके और माध्यमिक शिक्षा विशेष रूप से आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों तक पहुँच सके; इन कमजोर वर्गों में शैक्षिक रूप से पिछड़े, ग्रामीण क्षेत्र की लड़कियाँ एवं विकलांग बच्चे तथा हाशिए के दलित, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों के बच्चे और शैक्षणिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों के बच्चे शामिल हैं। इस प्रकार यद्यपि माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने का कोई कानून नहीं बना लेकिन लक्ष्य पूर्ति की दिशा ज़रूर तय कर दी गई है।

एक परंपरागत तर्क कि 12 वर्षीय शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने में बहुत सारी समस्याएँ हैं क्योंकि आजादी के छः दशक बाद भी 8 वर्षीय सार्वभौमिक शिक्षा एक दिवास्वप्न बनी हुई है। यह समझने की ज़रूरत है कि यह एक ज़रूरी 'यूटोपिया' (Utopia) है और हमें राष्ट्रीय शक्ति और संसाधनों का उपयोग इस चुनौती से निपटने में अवश्य करना चाहिए न कि इससे भागकर राष्ट्र को संकट में डालना चाहिए। भारत सहित कोई भी देश, अलग-थलग भौगोलिक इकाई नहीं है; सभी एक वैश्विक ढाँचे में गुंथे हुए हैं। यह कोई वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा के चुनाव का प्रश्न नहीं है, यह एक ज़रूरत है जिसकी उपेक्षा करना

राष्ट्र को संकट में डालना है। वैश्विक प्रतिस्पर्द्धात्मक मानव संसाधन के द्वारा ही हम उत्पादन, सेवा, व्यापार और शासन में वैश्विक प्रतिस्पर्द्धाओं से निपट सकते हैं; और माध्यमिक शिक्षा इन उद्देश्यों को पाने का आधार है। इन मुद्दों को सामने लाने की ज़रूरत है और इसमें संदेह नहीं कि एन.सी.ई.आर.टी. यह काम कर सकती है।

वैश्वीकरण के दबाव के अलावा, माध्यमिक शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच उपलब्ध कराना राज्य का भी कर्तव्य है। शिक्षा एक सामाजिक आकांक्षा है, जिसे गुणवत्तापूर्ण जीवन की सफलता का द्वार समझा जाता है। आनुभाविक प्रमाण शिक्षा और गुणवत्तापूर्ण जीवन के प्रत्यक्ष संबंध को दर्शाते हैं, मानव विकास की सूची (Human Development Index) इसे सत्यापित करती है। शिक्षा की पुरानी सामाजिक आकांक्षा अब एक नया मोड़ ले रही है। आज गरीब और कम पढ़े-लिखे माता-पिता अपने बच्चों को भी कुछ पढ़ाना-लिखाना चाह रहे हैं और शिक्षित मध्यवर्ग गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की इच्छा कर रहा है। प्राइवेट सेक्टर में ऊँचे शुल्क वाली माध्यमिक शिक्षा की प्रचुरता अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की प्राथमिकता का संकेत है और इसे सरकारी स्कूलों में प्रदान की जाने वाली गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के संदर्भ में जाँचा जाना चाहिए।

औपचारिक और वैकल्पिक शिक्षा के तरीकों के ज़रिए सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा को प्राप्त करने का जो लक्ष्य रखा गया है उसे भारत को सन् 2020 तक प्राप्त करने के प्रयास करने हैं।

इसे प्राप्त करने से पहले अनुमान है कि 2012 तक प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य प्राप्त कर लिया जायेगा। यह अनुमान भी है कि विद्यालयी शिक्षा की आंतरिक कुशलता में सौ प्रतिशत की वृद्धि होगी और 2012 के बाद कोई फेल नहीं होगा। तभी दाखिले का परिमाण किसी आयु वर्ग के वास्तविक आबादी के अनुकूल होगा। सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा (USE) को प्राप्त करने की यह रूपरेखा भारत सरकार की एसएसए (SSA) की रणनीति से मेल खाती है। यूईई (UEE) और यूएसई (USE) में आठ वर्षों का अंतर है जिससे (क) माध्यमिक स्तर पर सामर्थ्य निर्माण किया जा सके-माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान क्षमता न केवल अपर्याप्त है बल्कि गुणवत्तापूर्ण भी नहीं है और देश के विभिन्न क्षेत्रों में पहुँच के संदर्भ में असमान स्थिति में है; (ख) उपलब्ध आँकड़ों की तुलना में जनसंख्या बढ़ती वृद्धि दर को ध्यान में रखा जा सके; (ग) और यूईई को प्राप्त करने में कुछ छूट दी जा सके। विभिन्न अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि 2016 तक यूईई को प्राप्त करने का संभव परिदृश्य बनता है।

भारत सरकार माध्यमिक शिक्षा पर, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) के तहत अधिक निवेश (52,000 करोड़ रुपये) करना चाहती है। उसने 6000 मॉडल स्कूल स्थापित करने का भी प्रस्ताव किया है। इनमें से 3500 मॉडल स्कूल केंद्रीय विद्यालयों के पैटर्न पर स्थापित होंगे और 2500 स्कूल पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप (PPP) तरीके के होंगे। शिक्षा कर

(एजुकेशन सेस) में तीन प्रतिशत की वृद्धि की गई है ताकि माध्यमिक और उच्च शिक्षा का विकास किया जा सके। माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिए हमें प्रारंभिक स्तर पर ट्रांज़िशन रेट (Transition Rate) बढ़ानी होगी तथा आस-पास के इलाकों में माध्यमिक शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध करानी होंगी। साथ ही हमें गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा उचित मूल्य पर उपलब्ध करानी होगी। माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए वर्तमान संस्थानों को मजबूत बनाने के साथ-साथ नये संस्थान खोलने की भी ज़रूरत है। प्रारंभिक शिक्षा के विपरीत जहाँ शिक्षक-छात्र का अनुपात 1:40 है, यहाँ हमें भारी संख्या में विभिन्न विषयों के शिक्षकों की ज़रूरत होगी। कभी-कभार हमें केवल 10 छात्र पर एक शिक्षक भी रखना पड़ सकता है।

विद्यालयी शिक्षा : पाठ्यचर्या संदर्भ

वर्तमान पाठ्यक्रम की जड़ता को तोड़ने का क्या कोई रास्ता है? क्या सीखने के परिणामों पर ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि उसी से पाठ्यक्रम की पाठ्यवस्तु निकाली जा सके। क्या हमारा ध्यान जाँच-पड़ताल करने, प्रश्न उठाने, सृजनात्मकता, वस्तुपरकता, समस्या समाधान की योग्यता, निर्णय लेने वाले कौशल और सौंदर्य संवेदना का विकास करने वाली पाठ्यवस्तु की ओर होना चाहिए? इसी संदर्भ में सिमेस्टर प्रणाली को अधिक व्यावहारिक मायने दिए जाने की ज़रूरत है, न कि वर्ष में दो बार परीक्षाओं का आयोजन करना इसका लक्ष्य होना चाहिए।

छात्रों द्वारा पाठ्यक्रम विकल्पों के चुनाव में भी विषमता है। विज्ञान एवं गणित के दाखिलों में कमी हो रही है, समाज विज्ञानों तथा मानविकी में नामांकन बढ़ रहा है। उच्च शिक्षा पर इस असमानता का प्रभाव पड़ रहा है—सामान्य और विशिष्ट दोनों क्षेत्रों में। अगर माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर इस विषमता से नहीं निपटा गया तो उच्चतर शिक्षा पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

माध्यमिक शिक्षा में वस्तुतः नवीं कक्षा से लेकर बाहरवीं कक्षा तक की शिक्षा शामिल है। परंतु सुविधा के लिए ग्यारवीं और बाहरवीं कक्षा की पढ़ाई को उच्चतर माध्यमिक नाम दिया गया है। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा विद्यालयी तंत्र का एक निर्णायक और अंतिम चरण है। यह उच्चतर शिक्षा का द्वार है और शिक्षा को काम की दुनिया से जोड़ने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी। विकसित दुनिया एक ऐसे चरण में पहुँच चुकी है जहाँ 12वीं तक की स्कूली शिक्षा सार्वभौमिक बन गई है, वहीं भारत समेत विकासशील देशों में वह रूपांतरण के दौर से गुजर रही है। भविष्य में देश की दीर्घकालीन सामाजिक और आर्थिक रणनीति के संदर्भ में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की भूमिका को पुनः परिभाषित करने की ज़रूरत होगी। इस चरण में आकर शिक्षा अकादमिक और व्यावसायिक (वोकेशनल) धाराओं में बँट जाती है। दोनों धाराओं की अलग-अलग विशेषताएँ हैं और उन्हें चलाने तथा प्रबंधन के लिए आवश्यक निवेश की प्रकृति भिन्न है। एन.सी.ई.आर.टी. ने 'कार्य और शिक्षा' पर फ़ोकस ग्रुप की रिपोर्ट

तैयार की है परंतु मुझे यह कहने में संकोच हो रहा है कि पाठ्यक्रम पर उसके प्रभाव को ठीक से विश्लेषित नहीं किया गया है।

विद्यालयी पाठ्यक्रम : क्रियान्वयन पद्धति

माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता निश्चय ही शिक्षा के इस स्तर पर दी जाने वाली पाठ्यवस्तु की गुणवत्ता पर निर्भर करती है और इस बात पर भी कि उसे किस तरह पढ़ाया जाता है, तथा शिक्षक उसे बच्चों तक संप्रेषित करने में कितने समर्थ हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF 2005) ने अधिगम के लिए रचनात्मकता को एक प्रमुख प्रतिमान बनाने की सिफ़ारिश की थी। इसका अर्थ यह है कि छात्र व्यक्तिगत और सहयोगी परिस्थितियों में अनुभव रूप में दी गई सामग्री/क्रियाओं के आधार पर विद्यमान विचारों से नये विचारों को जोड़ते हुए नये ज्ञान की सक्रिय रूप से रचना करते हैं। सक्रिय भागीदारी में जाँच-पड़ताल, खोज, प्रश्न-उत्तर, वाद-विवाद, प्रयोग और मनन करना शामिल है। ऐसा न हो कि यह सरोकार केवल दिखावा मात्र ही रह जाएँ। एन.सी.ई.आर.टी. को आगे आकर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में शिक्षाशास्त्रीय हस्तक्षेप विकसित करने के लिए काम करना चाहिए ताकि बच्चे और अध्यापक इस विचार को आत्मसात कर सकें और इसका महत्व समझ सकें।

रचनात्मकता का प्रतिमान कई तरह से स्वागत योग्य फीचर है क्योंकि वह :

1. बच्चे को शैक्षिक प्रक्रिया के केंद्र में रखता है,

2. अधिगम के अत्यंत जड़ पराजयवादी (Reductionistic) प्रतिमानों से दूर ले जाता है।
 3. बच्चों द्वारा ज्ञान की रचना के एक महत्त्वपूर्ण तरीके के रूप में क्रियाकलापों एवं परीक्षणों पर बल देता है।
 4. बच्चों की ज्ञान की अवधारणाओं का सम्मान करता है चाहे वे विभिन्न विषयों के आदर्श प्रतिमानों से कितने ही भिन्न क्यों न हों।
 5. शिक्षक को वह एक संप्रेषक (ट्रांसमीटर) के रूप में नहीं बल्कि ज्ञान को सुगम बनाने वाले के रूप में देखता है।
 6. वह ज्ञान के क्षेत्रीय संदर्भों का उपयोग करते हुए अवधारणाओं के निर्माण (कुछ सीमा तक) की ओर केंद्रित है।
- ‘क्षेत्रीय’ बनाम ‘वैश्विक’ ज्ञान को लेकर बहुत चर्चाएँ हुई हैं। अगर क्षेत्रीय ज्ञान का अर्थ बच्चों के वातावरण (जैसे कि आदिवासी समुदायों में पौधों के बारे में बच्चों का ज्ञान) अथवा क्षेत्रीय तकनीकी कौशल और अभ्यासों के संदर्भ में ग्रहण किया गया ज्ञान है तब वस्तुतः कोई मुद्दा नहीं है। लेकिन उसमें जब सभी प्रकार के क्षेत्रीय विश्वास और मिथक शामिल हो जाते हैं, यह समस्यात्मक बन जाता है। साथ ही रचनात्मकता का अर्थ भिन्न लोगों के लिए भिन्न हो सकता है। सामयिक बहस में इसे एक शिक्षाशास्त्रीय प्रतिमान माना जाता है और इसे इसी रूप में समझा जाना चाहिए। विशेष रूप से इसे यथार्थवाद के समान नहीं समझा जाना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि ज्ञान बुनियादी रूप से एक सामाजिक रचना है, क्या सही और क्या गलत इसे समझने की कोई निरपेक्ष कसौटी नहीं है।
- विद्यालयी शिक्षा पाठ्यक्रम से संबंधित विभिन्न पहलू और मूल्यांकन अब शिक्षा के प्रारंभिक स्तर के लिए बनाये गए कानून आरटीई एक्ट का हिस्सा बन गए हैं। यद्यपि आरटीई एक्ट के अनुभाग 29(2) के प्रावधान स्कूली शिक्षा के सभी चरणों के लिए समान रूप से वैध (Valid) हैं, जैसे कि -
1. संविधान में निहित मूल्यों से अनुरूपता;
 2. बच्चे का सर्वांगीण विकास;
 3. बच्चे के ज्ञान, अंतःशक्ति और प्रतिभा का विकास;
 4. शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं का यथा संभव संपूर्ण विकास;
 5. बाल अनुकूल एवं बाल केंद्रित तरीके से क्रियाकलापों, खोज एवं छानबीन के ज़रिए अधिगम;
 6. शिक्षा का माध्यम, जहाँ तक साध्य हो, बालक की मातृभाषा रखना;
 7. बालक को डर, सदमे और चिंता से मुक्त रखना और उसे स्वतंत्र रूप से अपने विचार प्रकट करने में मदद करना;
 8. बालक के ज्ञानबोध और उसे उपयोग करने की उसकी योग्यता का व्यापक एवं सतत् मूल्यांकन करना।

बच्चे के बुनियादी अधिकार के हिस्से के रूप में उपर्युक्त प्रावधानों को किस तरह न्यायोचित बनाया जा सकता है? हालांकि उक्त प्रावधानों के 'उल्लंघन' को सही-सही बताना मुश्किल है, फिर भी शिक्षक और विद्यालयों को बार-बार याद दिलाया जाना चाहिए कि वे उक्त प्रावधानों का ठीक से पालन करें और समुचित लक्ष्य तक पहुँचने का निरंतर प्रयत्न करें। उक्त प्रावधानों का ठीक से पालन करने के संदर्भ में सही निवेशों का विकास करना एन.सी.ई.आर.टी. के समक्ष एक चुनौती है।

शारीरिक तथा मानसिक रूप से चुनौतीपूर्ण विद्यार्थियों के लिए पाठ्यचर्या की चुनौतियाँ

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) ने माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्कूलों में 9.66 करोड़ बच्चों के होने का अनुमान लगाया जबकि 1997-98 में सिर्फ 2.70 करोड़ बच्चों के दाखिले की सूचना मिली। यह संभावित आबादी का लगभग 25 प्रतिशत ही बनता है। सामान्य शिक्षा में इतने कम प्रतिशत बच्चों का होना एक गंभीर सवाल है। क्योंकि देश जनसंख्या विस्फोट को मानव-संसाधन में रूपांतरित करने की तैयारी कर रहा है। माध्यमिक स्तर पर बच्चों का ड्रॉपआउट भी शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ी क्षति है। जब सामान्य शिक्षा के विकास में कम बच्चों का प्रवेश तथा हाई ड्रॉपआउट रेट जैसी बड़ी बाधाएँ हों; तब विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र में तो समस्याएँ और बढ़ जाती हैं। इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण

कारकों की ओर ध्यान देने की ज़रूरत है, जैसे कि सामान्य शिक्षा को एक जन आंदोलन का रूप देना, विद्यालयी शिक्षा में पाठ्यचर्या अनुकूलन को अत्यावश्यक बनाना, विकलांगों के लिए शैक्षिक कार्यनीतियों का निर्माण, विक्षिप्त बच्चों की शिक्षा में सुधार के प्रयत्न करना क्योंकि उनकी शिक्षा सामान्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक खर्चीली होती है; उन्हें समुचित वातावरण प्रदान करना क्योंकि फ़िलहाल देश में कुछ ही संस्थान ऐसे हैं जिन्होंने इस कार्य को सफलतापूर्वक संपन्न किया है और सूचना तकनीकी को लागू करना, इत्यादि।

विद्यार्थी का मूल्यांकन: सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन पर ध्यान देना

विद्यालयी शिक्षा के बारे में बात करते समय स्कूल शिक्षा बोर्ड (विशेष रूप से माध्यमिक) के संदर्भ को अलग रखना असंभव है, जो माध्यमिक शिक्षा के लिए जन परीक्षा आयोजित करती है। एन.पी.ई (1986) ने मूल्यांकन सुधारों की जबर्दस्त वकालत की थी और एक मूल्यांकन फ्रेमवर्क बनाने का संकेत किया था। उसने अपने प्रोग्राम ऑफ एक्शन (POA) में जन परीक्षाओं को धीरे-धीरे समाप्त करने जैसे कई सुझाव दिए थे। उसने रटंत विद्या पर बल न देकर सतत् और व्यापक मूल्यांकन को अधिक महत्त्व देने की सिफ़ारिश की थी और सेमेस्टर पद्धति, ग्रेडिंग आदि लागू करने की बात की थी। ये सारे प्रावधान आरटीई एक्ट, 2009 के सेक्शन 29(2) में समाविष्ट हैं। परीक्षा सुधारों की प्रक्रिया को

आगे बढ़ाने के लिए व्यावसायिक हस्तक्षेप के तंत्र के जरिए कार्यनीति बनानी होगी क्योंकि हम यह अनुमान नहीं लगा सकते कि इस एक्ट में संशोधन करके कब तक इसमें 0-18 वर्ष की आयु सीमा के बच्चों को शामिल करके इसे माध्यमिक स्तर तक लागू किया जा सकेगा।

आमतौर पर यह एक गलत धारणा है कि परीक्षा के संचालन और प्रमाणपत्र देने की जिम्मेदारी शिक्षक और स्कूल को सौंपने पर स्टैंडर्ड गिर सकता है और शिक्षक के शिक्षण समय में कमी आ सकती है। यह सही तर्क नहीं है। एक मूलभूत सिद्धांत यह है कि जो शिक्षक शिक्षण में निपुण है, उसमें मूल्यांकन करने की सभी योग्यताएँ भी होती हैं और अपने विद्यालय के बच्चों को वह सही प्रमाणपत्र भी दे सकता है। स्पष्ट रूप से यह शिक्षक से एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी और जवाबदेही की अपेक्षा करता है और इसकी अपेक्षा कतई नहीं की जानी चाहिए। कदाचित इसमें अंतर विद्यालयी गुणवत्ता में सुधार लाने की क्षमता है जिसे उच्च व व्यावसायिक शिक्षा में दाखिले के लिए आयोजित की जाने वाली प्रवेश परीक्षाओं में विद्यार्थियों की उपलब्धि के जरिये परखा जा सकता है।

इसी से संबंधित एक सवाल अक्सर उठाया जाता है, वह यह कि जनपरीक्षाओं से अलग हटने पर स्कूल परीक्षा बोर्ड (माध्यमिक) की क्या नयी जिम्मेदारियाँ हो सकती हैं। इस बारे में मेरे दो सुझाव हैं जिन पर विशेषज्ञों की राय अपेक्षित है; बोर्ड ऐसे यंत्र और कार्यनीति का निर्माण कर सकते हैं जिनके द्वारा उनसे संबंधित

विद्यालयों की उपलब्धि का अनुवीक्षण किया जा सके; शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए बोर्ड शिक्षकों की योग्यता को बढ़ाने के कार्यक्रम चला सकते हैं; देशभर के स्कूलों में प्रचलित पाठ्यपुस्तकों और अन्य निर्देशित सामग्री की गुणवत्ता पर पुनर्विचार के कार्यभार को लिया जा सकता है; जो लोग उच्च व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा संस्थान में प्रवेश पाना चाहते हैं उनके लिए आदर्श परीक्षाओं (Normative Examinations) के संचालन का कार्यभार लिया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा बरक्स व्यावसायिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा तब तक संपूर्ण नहीं हो सकती जब तक कि व्यावसायिक शिक्षा को औपचारिक विद्यालय का अंग नहीं बनाया जाता। अकादमिक शिक्षा के लिए औपचारिक विद्यालय अधिक साधन-संपन्न और तत्पर होते हैं। किंतु उनके प्रशासनिक अधिकारी और अकादमिक संकाय के पास व्यावसायिक कार्यक्रमों को लागू करने वाला दर्शन नहीं होता। अगर व्यावसायिक शिक्षा को मौजूदा ढाँचे के साथ जोड़ना है तो औपचारिक विद्यालय की अवधारणा को रूपांतरित करना होगा। कुछ मूल सरोकार जो औपचारिक विद्यालय में व्यावसायिक कार्यक्रमों की सफलता को प्रभावित करते हैं, इस प्रकार हैं :

1. व्यावसायिक शिक्षा अकादमिक शिक्षा से हीन समझी जाती है।
2. विभिन्न व्यावसायिक कोर्सों के लिए व्यावसायिक संसाधनों की कमी है।

3. किसी भी क्षेत्रीय भाषा में शिक्षण अधिगम सामग्री नहीं है और यह व्यावसायिक कोर्स के बच्चों के लिए एक गंभीर समस्या है।
4. व्यावसायिक शिक्षकों के निर्माण के लिए कोई समुचित कार्यक्रम नहीं है। शिक्षा के परंपरागत महाविद्यालयों में न तो पर्याप्त संसाधन हैं और न ही व्यावसायिक शिक्षक निर्माण के कार्यक्रम के लिए शिक्षक प्रशिक्षक। इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी, कृषि, स्वास्थ्य और पैरा मेडिकल कार्यक्रमों से जुड़े संस्थानों के मशवरे से एक डिजाइन तैयार करना होगा ताकि ये संस्थान न केवल व्यावसायिक शिक्षा के कोर्स तैयार करें बल्कि उसे चलाने में भी मदद करें।
5. सभी कार्यक्रमों को दो वर्षों की अवधि (11-12वीं) तक सीमित रख कर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा उन्हें प्रमाणित करने की जड़ता को तोड़ने की ज़रूरत है।

यह महसूस किया गया है कि जब तक इन मुद्दों की आलोचनात्मक जाँच-पड़ताल नहीं की जाती और स्थिति को सुधारने के लिए निर्णय नहीं लिए जाते तब तक औपचारिक विद्यालयों में व्यावसायिक कार्यक्रम फल-फूल नहीं सकते। जब तक उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र पर गंभीरता से पुनर्विचार नहीं होता तब तक स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में : मुक्त दूरस्थ शिक्षा

यद्यपि औपचारिक विद्यालयों पर यूईई (UEE) का लक्ष्य प्राप्त करने का दबाव रहता है माध्यमिक आयु वर्ग के काफ़ी ऐसे बच्चे हैं जो औपचारिक स्कूलों का लाभ नहीं उठा पाते। ओपेन एण्ड डिस्टेंस लर्निंग (ODL) पद्धति ऐसे लोगों की ज़रूरत और आकांक्षाओं को पूरा करने में मदद करती है जो अपनी अकादमिक और व्यावसायिक योग्यताओं को बढ़ाना चाहते हैं। आरटीई एक्ट का दिशा निर्देश है कि सभी बच्चे पहले आठ साल की शिक्षा केवल औपचारिक विद्यालयों के ज़रिए ही प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए ओ. डी. एल. (ODL) के प्रावधान महत्वपूर्ण हो उठते हैं। हमें ऐसे चरण तक पहुँचना है जहाँ औपचारिक और ओ. डी. एल. (ODI) पद्धतियों की सीमा रेखाएँ मिट जाएँ और दोनों एक दूसरे के सहयोगी बन जाएँ।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि यदि वे सभी निवेश जो आईसीटी (ICT) का प्रयोग करते हुए दूरस्थ शिक्षा को व्यापक और सक्रिय बनाते हैं, उनका कारगर प्रयोग पाठ्यचर्या विकास, अधिगम, शिक्षण और प्रशिक्षण से जुड़ी प्रक्रियाओं में नहीं किया गया तो यह औपचारिक और दूरस्थ दोनों प्रकार की शिक्षा के लिए लाभकारी नहीं होगा।

‘गुरु’ अथवा व्यावसायिक शिक्षक (?)

शिक्षा की सफलता बुनियादी रूप से इसे प्रदान करने की प्रक्रिया की गुणवत्ता पर निर्भर करती है

और इस दिशा में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षक की भूमिका उन सब कारकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जो इस प्रक्रिया से जुड़े हैं। हमारे देश में शिक्षक की भूमिका की बहुत प्रशंसा की जाती रही है; राष्ट्रीय संदर्भों में किसी भी विषय पर चर्चा में गुरु के आदर्शों का उल्लेख किया जाता रहा है। जनतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष शिक्षा के संदर्भ में गुरु की यह अवधारणा कितनी प्रासंगिक है? क्या 'प्रोफेशनल टीचर' की अवधारणा प्राचीन 'गुरु' से किसी भी अर्थ में कमतर है? क्या दोनों को संबद्ध करके एक संश्लेषण (Synthesis) कायम हो सकता है।

कोई भी गुरु की अवधारणा को स्वप्निल, रहस्यात्मक तथा पुरातन समझकर फ़ौरन खारिज कर सकता है। एक विशेष सामाजिक-दार्शनिक संदर्भ में गुरु एक संस्थागत उत्तर था-मूलतः वह शिक्षा की एक मौखिक परंपरा थी, उस समय मानवीय शिक्षक के अलावा शिक्षा का कोई अन्य स्रोत नहीं था, और शिक्षा चुनिंदा विशिष्ट (इलीट) वर्ग तक सीमित थी। दूसरी तरफ़, हमारा युग एक ऐसा युग है जो शैक्षिक अवसरों की समानता के आदर्शों से निर्देशित है, जिसमें तकनीकी प्रधान अधिगम संसाधनों की बहुलता के ज़रिए हम जीवनपर्यंत शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। गुरु जिस आध्यात्मिक विवेक की शिक्षा देता था, उस पर भी हम ऊँगली उठा सकते हैं। शिक्षा तब व्यक्ति की आध्यात्मिक संतुष्टि एवं पूर्णता का माध्यम-भर था। उसके पीछे ऐसी ज्ञान-मीमांसा काम कर रही थी जिसके अनुसार

आध्यात्मिक सत्य की प्राप्ति पुस्तकीय ज्ञान या आत्मविमर्श से न होकर विवेक से होती थी और जिसे दिव्य प्रेरणा प्राप्त गुरु ही दे सकता था। गुरु की ज़रूरत ऐसे विश्वासों की देन थी जिसमें मुक्ति सिर्फ़ गुरु कृपा से ही मिल सकती थी। इन आलोचनाओं के बावजूद आज के समय में गुरु के आदर्शों को एकदम से नकार देना उचित नहीं है क्योंकि उसे नकारना उस आदर्श में निहित सूक्ष्म सौंदर्यात्मक गुणों के प्रति असंवेदनशील होना है।

उपर्युक्त आमुख में हमारा सीधा सरोकार सामयिक संदर्भ में शिक्षक-निर्माण के तरीकों से है। हम जानते हैं कि गुरु ज्ञान प्रदान करने के प्रति पूर्णतः समर्पित होता था-विद्वान और चरित्र का धनी और जो समाज की सेवा किसी स्वार्थ या भौतिक उपलब्धि के लिए नहीं अपितु ज्ञान के लिए करता था। शिष्य को पढ़ाने में वह अपनी आध्यात्मिक उन्नति देखता था।

गुरु संस्थान से एक अन्य शिक्षा यह मिलती है कि गुरु को सम्मान और प्रतिष्ठा समुदाय की कृपा से नहीं अपितु अंतर्निहित गुणों के कारण मिलती थी। आधुनिक युग में यह सम्मान एक प्रभावी शिक्षक बनने के लिए आवश्यक व्यावसायिक कौशल और योग्यता को प्राप्त करने के ईमानदार एवं समर्पित प्रयत्नों से मिलता है। प्रत्येक शिक्षक से यह आशा की जाती है कि वह एक व्यक्ति और शिक्षक के रूप में बेहतर भूमिका का निर्वाह करे, चाहे वह किसी भी कारण से शिक्षण व्यवसाय में आया हो। इसलिए आदर्श गुरु बाहरी तौर पर कितना भी पुरातन

प्रतीत होता हो, इसकी बुनियादी चेतना में निम्नलिखित संदेश निहित है—**एक व्यक्ति और एक शिक्षक दोनों रूपों में निरंतर संघर्ष करना, छात्रों के विकास के प्रति प्रतिबद्धता, निरंतर सीखने के प्रति प्रतिबद्धता और सामाजिक सरोकार रखना।**

ये सार्वभौमिक सिद्धांत हैं जिन्हें देश-काल मिटा नहीं सकता और अच्छे कार्य करने के लिए हमें सदैव इनका ध्यान रखना चाहिए। ये सिद्धांत वर्तमान में चल रहे शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के तरीकों में बदलाव लाने और उन्हें पुनर्जीवित करने की चुनौती हमारे सामने रखते हैं। ताकि हम ऐसे शिक्षक तैयार कर सकें जो उपरोक्त आदर्शों के करीब हों।

व्यावसायिक रूप से शिक्षक तैयार करने के बारे में कुछ प्रासंगिक सवाल हैं जिन पर चर्चा होनी चाहिए। क्या शिक्षक शिक्षा में ऐसे शिक्षक तैयार करने पर जोर देना चाहिए जिन्हें स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों की पूर्ण समझ हो और किसी एक स्तर पर कार्य करने की विशेषज्ञता हो? शिक्षक शिक्षा में सुधार लाने के लिए पूर्व प्राथमिक से लेकर उच्चतर माध्यमिक तक सभी स्तरों के शिक्षक विश्वविद्यालयी व्यवस्था के अंतर्गत तैयार किए जाने चाहिए जिसकी सिफारिश शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी की थी लेकिन जिस पर अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया गया। क्या शिक्षक तैयार करने में उच्चतर माध्यमिक स्तर को विशिष्ट स्तर समझना चाहिए अथवा उसे बी.एड. कार्यक्रम में ही सम्मिलित करना

चाहिए? क्या व्यवस्था को सोच समझकर विषयवस्तु और शिक्षा शास्त्र का समन्वय करते हुए शिक्षक शिक्षा के एकीकृत कार्यक्रम शुरू करने चाहिए? क्या यह शैक्षिक रूप से सही है कि निम्न कक्षाओं में निम्न योग्यता प्राप्त शिक्षक ही पढ़ायें? क्या प्रक्रिया अपनायी जाए जिससे शिक्षक अपनी व्यावसायिक आचार संहिता का पालन कर सकें। बहुत सारे सवालों के बीच ये कुछ ऐसे सवाल हैं जो महत्वपूर्ण हैं और जो विद्यालयी शिक्षा और शिक्षा देने वाले शिक्षक की गुणवत्ता के लिए पुनर्विचार की मांग करते हैं।

निष्कर्ष

मित्रों, मैंने अपने सीमित अनुभवों के आधार पर विद्यालयी शिक्षा और शिक्षकों की शिक्षा के बारे में कुछ विचार व्यक्त किए हैं। मैंने अनेक मुद्दों को छूने की कोशिश की है, जिन पर आगे एन. सी.ई.आर.टी. में विमर्श करने की ज़रूरत है। विद्यालयी शिक्षा तथा शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में एन.सी.ई.आर.टी. के पचास वर्षों के संचित योगदान के आकलन से हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलेगी। मैं इस अवसर पर एन.सी.ई.आर.टी. की सफलता की कामना करता हूँ और उन सबको धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्हें इस संस्था की सेवा करने का मौका मिला। एन.सी.ई.आर.टी. की क्षमता इसकी मूलभूत संरचना में अंतर्निहित है और अगर उसमें कुछ सुधार करना है, कुछ जोड़ना है तो हमें विद्वतापूर्ण विमर्श करना होगा। स्वर्ण जयंती का यह वर्ष इसी का अवसर प्रदान करता है और यह एक महत्वपूर्ण यादगार वर्ष बन सकता है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं में जेंडर विभेदीकरण : एक आलोचनात्मक अध्ययन

शारदा कुमारी*

भारत को जेंडर आधारित विकासशील शिक्षा नीति के संदर्भ में जाना जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ज़ोर डाला गया और उनको विद्यालय में लाने के विशेष प्रयास किए गए। कोशिशें ये की गईं कि लड़कियाँ न केवल विद्यालयों में आएँ बल्कि कम-से-कम प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक तो बनी रहें। लड़कियों का विद्यालयों में रहना एक अलग बात है और वे विद्यालयों में किस तरह के भेदभाव का शिकार हो रही हैं; यह अलग बात है। पुरुषों और स्त्रियों के बीच के ज़्यादातर अंतर सामाजिक जीवन द्वारा बनाए गए हैं, वे न तो प्राकृतिक हैं और न स्वाभाविक। इन्हीं अंतरों के कारण महिलाएँ बहुत से बंधन और बाधाएँ झेलती हैं। विद्यालय भी उन अंतरों को पोषित करने में पीछे नहीं हैं। रोजमर्रा के विद्यालयी जीवन में होने वाली प्रक्रियाएँ सापेक्ष और निरपेक्ष रूप से जेंडर असमानता के छुपे शिक्षाक्रम के लिए ठोस पृष्ठभूमि का काम करती हैं। बच्चे जिन अंतरों के बारे में घर-परिवार व पास-पड़ोस से समझ हासिल करते हैं, विद्यालयी जीवन किस तरह से उनकी इस समझ को पुख्ता करता चलता है, यही इस शोध-पत्र के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया गया है।

भारत को जेंडर आधारित विकासशील शिक्षा नीति के संबंध में जाना जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ज़ोर डाला गया। इसमें इस बात पर बल दिया गया कि शिक्षा को महिलाओं की मूल स्थिति में परिवर्तन के लिए एक संसाधक के रूप में प्रयोग किया जाएगा। राष्ट्रीय शैक्षणिक पद्धति महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में सकारात्मक मध्यस्थ

* वरिष्ठ प्रवक्ता, मंडल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर. के. पुरम, सेक्टर-7, नयी दिल्ली-22

की भूमिका निभाएगी। इस संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अतिरिक्त भारत ने कई अंतर्राष्ट्रीय समझौते भी किए, जैसे : डकार फ्रेमवर्क फॉर एक्शन-2000, द यूनाइटेड नेशंस मिलेनियम डेवलपमेंट गोल-2000, द प्रोग्रेस ऑफ़ एक्शन 1992, बीजिंग घोषणा-1995 और अब शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 भी शिक्षा में जेंडर समानता की बात करता है।

शिक्षा में जेंडर समानता के इन सभी संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भी वास्तविकताएँ सकारात्मक रूप नहीं ले पाई हैं। विशेषकर सुविधा वंचित समूह और ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियों के संदर्भ में स्थिति कुछ इस प्रकार है :

- दस में से नौ लड़कियाँ ऐसी हैं जो स्कूली शिक्षा पूरी नहीं कर पाती हैं,
- शहरी क्षेत्र में 100 में से मात्र चौदह लड़कियाँ बारहवीं तक की शिक्षा पूरी कर पाती हैं,
- ग्रामीण क्षेत्रों की सौ में से सिर्फ़ एक लड़की ही पहली से बारहवीं तक की शिक्षा पूरी कर पाती है,
- विद्यालयों में बालमित्रवत् व्यवहार एवं माहौल न होने के कारण छब्बीस प्रतिशत लड़के-लड़कियाँ विद्यालय छोड़ देते हैं,
- छियासठ प्रतिशत लड़कियों के अभिभावक सिर्फ़ इसलिए अपनी लड़कियों का विद्यालय छोड़वा देते हैं क्योंकि विद्यालय उन्हें अपेक्षित परिवेश नहीं दे पा रहा है,
- बावन प्रतिशत लड़कियाँ अध्यापकों के भाषायी व्यवहार से त्रस्त होकर विद्यालय छोड़ने की

बात करती हैं। ये सभी तथ्य शैक्षणिक प्रक्रियाओं में निहित जेंडर सरोकारों की ओर संकेत करते हैं। जेंडर भेदभाव का सबसे व्यापक रूप है क्योंकि यह सभी वर्गों, जातियों, समुदायों में शिक्षा, रोज़गारपरक अवसरों, कार्यक्षेत्रों, घरेलू अधिकारों और यहां तक कि भाषायी संस्कारों में भी देखने को मिलता है। जेंडर भेद को एक ज्वलंत और बदलाव के बेहद महत्वपूर्ण कारक के रूप में पहचाने जाने की ज़रूरत है। साथ ही वास्तविक शिक्षागत ढाँचे की सभी प्रक्रियाओं में इसे विमर्श का मुद्दा बनाना ज़रूरी है। (वार्षिक रिपोर्ट 1999-2000, शिक्षा विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 179)

एक ओर तो स्कूलों में नामांकन में वृद्धि हो रही है, लड़के-लड़कियाँ दोनों ही प्रोत्साहित हैं विद्यालय में प्रवेश लेने के लिए। दूसरी ओर विद्यालय में चल रही शिक्षण प्रक्रियाएँ एवं कुछ अन्य कवायदें कुछ इस प्रकार की सीमाएँ तय कर देती हैं कि लड़के व लड़कियों का विभेदीकरण स्वयं आकार ले लेता है। उनमें असमान समाजीकरण से पैदा होने वाले विभेद से उबरने की क्षमता का विकास होने के स्थान पर दमनकारी या निराशावादी प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगती हैं जो 'पुरुषत्व' और 'नारीत्व' की पारंपरिक मान्यता को पुनर्स्थापित ही करती हैं। इन शैक्षणिक प्रक्रियाओं की आकृतियाँ/विद्यालयी उपागम ये रेखांकित करते हैं कि भिन्न जेंडर के कारण लड़कियाँ कैसे एक समूह से हटकर देखी जाती

हैं, इसके साथ ही विजातीय संदर्भ भी पैदा हो जाते हैं, जैसे : वर्ग, जाति, धर्म के साथ-साथ ग्रामीण व शहरी विभाजन। सिर्फ लड़कियाँ ही इस विभेदीकरण की मार को नहीं झेलतीं बल्कि लड़के भी उन समान परेशानियों को झेलते हैं जो शिक्षकों की पितृसत्तात्मक सोच द्वारा उनसे विशिष्ट प्रकार के व्यवहार की माँग करते हैं। उनसे उन रूढ़ भूमिकाओं का लबादा ओढ़े रखने की माँग की जाती है जिनसे वे ऊपर उठना चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि विकासशील जेंडरनीति को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए दृष्टिकोण में बड़े बदलाव की ज़रूरत है। समानता और सशक्तीकरण को आलोचनात्मक दृष्टि से समझने की ज़रूरत है।

शिक्षा बच्चों की जिंदगी को दिशा देने वाले तत्वों में से एक है। इसलिए वास्तविकता और समान नागरिकता का लक्ष्य हासिल करने के लिए विशेष पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र की रणनीतियाँ बनानी होंगी जो बच्चों को सशक्त करें। न्याय, समानता, नागरिकता और सामूहिक स्तर पर आज़ादी सरीखे संवैधानिक मूल्यों को समझने की क्षमता पैदा करें। विद्यालयी परिस्थितियों और अपेक्षाओं के संदर्भ में बहुत से शोध प्रश्न उभरते हैं जो इस प्रकार हैं :

1. अनेक संवैधानिक प्रावधानों, विशेष लाभकारी योजनाओं के बावजूद भी लड़कियाँ विद्यालयी शिक्षा तक क्यों नहीं पहुँच पा रही हैं?
2. स्कूली शिक्षा समाज में जेंडर आधारित असमानता को किस तरह बढ़ावा दे रही है?

3. क्या जेंडर संबंधी सरोकारों को अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पाठ्यचर्या का हिस्सा नहीं बनाया जाता?
 4. विद्यालयी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के वे कौन-से ऐसे घटक हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों में विभाजन की तस्वीरें उकेरते हैं?
 5. वर्गीय, सामाजिक, आर्थिक व जेंडर विभेदीकरण की नीति से बच्चों के नैतिक विकास और उपलब्धियों पर किस तरह से असर पड़ता है?
 6. किसी भी विद्यालय में विकासशील जेंडर नीति को लागू करने के लिए किस तरह की तैयारी की ज़रूरत है और किस तरह का धरातल तैयार करना पड़ेगा?
 7. वर्तमान शैक्षणिक प्रक्रियाओं में लड़कियों की समानता और सशक्तीकरण को कैसे उभारा गया है?
 8. विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा इस्तेमाल की जा रही भाषा किस तरह जेंडर असमानता का परिवेश पैदा करती है?
 9. शिक्षकों द्वारा भाषा का अलग तरीके से इस्तेमाल परिस्थितियों और माहौल को किस तरह से एक पक्ष को सबल बनने की दिशा की ओर ले जाता है?
- उपर्युक्त शोध प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोधकार्य के निम्नलिखित उद्देश्य रहे:

परियोजना के उद्देश्य :

1. विद्यालयी शिक्षा की मौजूदा प्रक्रियाओं और जेंडर असमानता के पारस्परिक संबंध के प्रति समझ बनाना।
2. उन संस्थागत प्रावधानों की प्रभावशीलता का अध्ययन करना जो शिक्षा में जेंडर संबंधी चुनौतियों को संबोधित करने के लिए लागू की गई थीं।
3. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के उन घटकों की पहचान करना जो जेंडर विभेदीकरण को जन्म देते हैं और उसे पुख्ता करते हैं।
4. जेंडर की सामाजिक संरचना, जेंडर भूमिकाओं और उनकी रूढ़ छवियों के बालकों के विकास व उपलब्धि स्तर पर प्रभाव का अध्ययन करना।
5. अध्यापकों की तैयारी में जेंडर विमर्श की स्थिति, स्तर व युक्तियों का विश्लेषण करना।
6. जेंडर समानता के संदर्भ में पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र के स्तर पर रचनात्मक हस्तक्षेप की पृष्ठभूमि तैयार करना।
7. प्रगतिशील जेंडर आधारित विद्यालयी माहौल तैयार करने के लिए सशक्त रणनीतियाँ सुझाना।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दावली का स्पष्टीकरण –

शोध अध्ययन का शीर्षक है “*शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं में जेंडर विभेदीकरण : एक आलोचनात्मक अध्ययन*”

उपर्युक्त शीर्षक में प्रयुक्त शब्दावली का स्पष्टीकरण इस प्रकार से है –

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया — विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था एक निश्चित ढाँचे की परिधि के भीतर कार्य करती है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया उसका महत्वपूर्ण घटक है। प्रस्तुत अध्ययन के संदर्भ में निम्नलिखित को आधार बनाया गया है —

- कक्षा में विद्यार्थियों के बैठने की व्यवस्था
- अध्यापन एवं गतिविधियों के आयोजन की दृष्टि से विद्यार्थियों के समूह-निर्माण की प्रक्रिया
- कक्षा अंतःक्रिया
- अध्यापक अभिवृत्ति
- अध्यापकों का विषयपरक ज्ञान
- शिक्षण विधियाँ
- अध्यापकों का भाषिक व्यवहार
- प्रदत्त कार्य
- आकलन की प्रक्रिया

यद्यपि विद्यालय में मौजूद ढाँचागत सुविधाएँ, पाठ्यपुस्तकें, सामुदायिक हस्तक्षेप आदि भी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, परंतु प्रस्तुत अध्ययन में इन घटकों को शामिल नहीं किया गया है।

जेंडर—स्त्री व पुरुष के बीच सामाजिक व सांस्कृतिक अंतर। ‘पुरुषत्व’ और ‘नारीत्व’ की पारंपरिक मान्यता। जेंडर संबंध न तो प्राकृतिक हैं और न ही स्वाभाविक। उनके बनने की प्रक्रिया ही ऐसी है कि आभास हो कि उनके बीच का असमानता का संबंध प्राकृतिक है।

विभेदीकरण—लड़के-लड़कियों में असमान समाजीकरण से पैदा होने वाला विभेद। सामाजिक ढाँचे में लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग निर्धारित भूमिकाएँ जिनसे लड़कियाँ तो दमन का शिकार होती ही हैं, लड़कों को भी तयशुदा ढंग से जीना सीखने के क्रम में कष्ट होता है। असमान समाजीकरण दोनों को ही प्रभावित करते हैं और किसी को भी अपनी क्षमताओं का पूर्णतः उपयोग करते हुए व्यक्तित्व विकास की आजादी नहीं देते।

न्यादर्श—प्रस्तुत अध्ययन के लिए न्यादर्श का चयन करते समय उद्देश्यपरक सैम्पलिंग (Purposing Sampling) को आधार बनाया गया है। न्यादर्श की स्थिति इस प्रकार है: जिला-नयी दिल्ली।

वे प्रशासनिक इकाईयाँ जिनके द्वारा संचालित विद्यालय न्यादर्श के अंतर्गत लिए गए, इस प्रकार हैं:

- शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली
- महानगर पालिका, नयी दिल्ली
- नवयुग संस्था, नयी दिल्ली
- न्यादर्श के अंतर्गत लिए गए पाँच विद्यालय—
 - सर्वोदय विद्यालय, जोर बाग, नयी दिल्ली
 - नवयुग विद्यालय, पेशवा रोड, नयी दिल्ली
 - नगरपालिका सहशिक्षा मिडिल विद्यालय, किदवई नगर, नयी दिल्ली।
 - नगरपालिका प्राथमिक विद्यालय, बाल्मीकि बस्ती, नयी दिल्ली।

– नगरपालिका माध्यमिक विद्यालय, औरंगजेब रोड, नयी दिल्ली ।

उक्त पाँच विद्यालयों को न्यादर्श के अंतर्गत चयनित करने के संदर्भ में तर्क इस प्रकार हैं:

- ये विद्यालय राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था की भिन्न भिन्न प्रशासनिक इकाइयों का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- राजधानी के भिन्न-भिन्न प्रकार के रिहायशी इलाकों का स्वरूप दर्शाते हैं।
- भिन्न-भिन्न चरणों में बंटी औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था के भिन्न-भिन्न स्तरों से संबद्ध हैं, जैसे—उच्चतर माध्यमिक, माध्यमिक, उच्च प्राथमिक और प्राथमिक स्तर।
- राज्य प्रशासन द्वारा नियंत्रित स्वैच्छिक संगठन द्वारा संचालित विद्यालय भी इस न्यादर्श में सम्मिलित हैं।

चयनित विद्यालयों में सभी पाठ्यचर्यात्मक विषयों यथा भाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन, विज्ञान, कला, कार्य अनुभव, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा का प्रतिनिधित्व करने वाले पाँच-पाँच अभिभावकों और दस-दस विद्यार्थियों (लड़के-लड़कियों) को शोध प्रश्नों के उत्तर पाने का आधार बनाया गया है।

शोध पद्धति—प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए सर्वेक्षण अनुसंधान विधि का उपयोग किया गया। इस विधि के माध्यम से गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकार के आँकड़ों का संग्रह किया गया। शोध कार्यशैली इस प्रकार थी :

समस्या से संबद्ध संकल्पना के स्पष्टीकरण व स्पष्ट अवबोधन हेतु विभिन्न लेखों का अध्ययन किया गया। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, नयी दिल्ली के न्यादर्श हेतु चयनित विद्यालय के चारों ओर बसावट के इलाकों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया क्योंकि उससे गुणात्मक तथ्य एकत्र करने में पूरी-पूरी मदद मिली। विद्यालयी गतिविधियों का (प्रातःकालीन बैठक से लेकर शिक्षण प्रक्रियाओं तक) अवलोकन किया गया। अध्यापकों, अभिभावकों व विद्यार्थियों के साथ केंद्रित समूह चर्चाएँ आयोजित की गईं। दत्त सामग्री प्राप्त करने के लिए द्वितीयक सूचनाओं की समीक्षा की गई।

शोध उपकरण—शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक आँकड़ों का संकलन स्वनिर्मित उपकरणों की सहायता से किया गया। अध्यापकों हेतु तीन पृष्ठों की प्रश्नावली तैयार की गई जिनके प्रश्न उनकी जेंडर संबंधी अवधारणाओं का स्पष्टीकरण करने में पर्याप्त रूप से सक्षम थे। विद्यार्थियों और अभिभावकों के लिए साक्षात्कार सूचियाँ तैयार की गईं जिनके माध्यम से यह जानने में मदद मिली कि कक्षायी गतिविधियों में वे स्वयं को किस रूप में देखते हैं। शिक्षण प्रक्रियाओं एवं अन्य विद्यालयी गतिविधियों का अवलोकन करने के लिए अवलोकन सूची तैयार की गई। अवलोकन सूची द्वारा विद्यालय में निम्नलिखित घटकों का अवलोकन किया गया:-

- **कक्षा का भौतिक परिवेश**—इसमें दीवारों का रंग-रोगन, पंखे, बल्ब, खिड़कियों की ऊँचाई व रख-रखाव, श्यामपट्ट का आकार व ऊँचाई, दीवारों पर टंगे चित्र, अलमारी आदि घटकों को सूक्ष्म अवलोकन की परिधि में लाया गया क्योंकि जेंडर संबंधी रूढ़ छवियों का निर्माण करने में इनकी भी महत्वपूर्ण भूमिका है।
- **विद्यार्थियों के बैठने की व्यवस्था**—जेंडर विभेदीकरण की जब बात की जाए तो विद्यार्थियों (सहशिक्षा वाले विद्यालयों में) के बैठने की व्यवस्था पर दृष्टिपात किए बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता। यह समझ बनाने के प्रयत्न किए गए कि क्या लड़के-लड़कियाँ पृथक्-पृथक् बैठते हैं? क्या लड़कों को पीछे और लड़कियों को आगे बैठाया जाता है। क्या बैठने की व्यवस्था अध्यापिका/ अध्यापक द्वारा संचालित होती है या फिर कोई भी विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार कहीं भी बैठ सकता है? क्या बैठने की व्यवस्था में बहुत जल्दी-जल्दी परिवर्तन किया जाता है, यदि हां, तो क्यों ?
- **खेल के मैदान का अवलोकन**— विद्यालयों के खेल के मैदान का अवलोकन जेंडर आधारित पूर्वाग्रहों व लड़के-लड़कियों के बीच के अंतर को समझने के लिहाज से बहुत महत्वपूर्ण जगह है। अतः निर्देशित और अनिर्देशित (मध्यावकाश) समय में कई बिंदुओं का अवलोकन किया गया जैसे—

- क्या लड़के-लड़कियाँ मिलजुल कर खेलते हैं?
- यदि अलग-अलग खेल रहे हैं तो आमतौर पर दोनों के कौन-से खेल हैं जो अधिक खेले जाते हैं। साथ में खेल खेलने पर लड़कियों-लड़कों की स्थिति क्या होती है?
- शारीरिक शिक्षा, कला व कार्य अनुभव की गतिविधियों का विभाजन, चयन व निर्माण

- अध्यापकों का भाषायी व्यवहार
- अध्यापक-विद्यार्थी अंतःक्रिया
- प्रदत्त कार्य और गृहकार्य
- आकलन की प्रक्रिया

इस अध्ययन के अंतर्गत जिन विद्यालयों को लिया गया, उनमें पढ़ने वाले ज्यादातर बच्चे बिहार, ओडिसा और उत्तर प्रदेश राज्यों से आए पहली पीढ़ी के शहरी अप्रवासी थे। अधिकतर बच्चों के माता-पिता दोनों कामकाजी थे, मात्र एक विद्यालय (पेशवा रोड) ऐसा था जहाँ सरकारी नौकरी वाले (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी) माता-पिता के बच्चे पढ़ रहे थे। लगभग सभी मामलों में, दोनों ही अभिभावकों ने कुछ सालों की औपचारिक विद्यालयी शिक्षा हासिल की थी, कुछ माताएँ ऐसी थीं जिन्होंने पढ़ना-लिखना बिल्कुल भी नहीं सीखा था। कुछ बच्चों के भाई-बहन उसी विद्यालय में थे और कुछ लड़कियों के भाई उसी विद्यालय के आस-पास

के निजी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय में पढ़ रहे थे। एक और बात कहना भी महत्वपूर्ण है कि जिन कक्षाओं व शैक्षिक-सहशैक्षिक प्रक्रियाओं का अवलोकन किया गया, वे शिक्षक निर्देशित कक्षा प्रबंधन की आंतरिक पूर्ण शैलियों की नुमाइंदगी करती थीं।

शोध अध्ययन के अंतर्गत किए गए अवलोकनों से उभरे महत्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हैं-

1. प्रातःकालीन सभाओं में जेंडर आधारित बंटवारा — विद्यालयी दिनचर्या की शुरुआत प्रातःकालीन सभा से होती थी। इस सभा का आयोजन ही यह बता देने में पर्याप्त था कि लड़के और लड़कियाँ हर तरह से फ़र्क किस्म के प्राणी हैं और दोनों को ही अलग तरह से आचरण करना है। जैसे- लड़के मात्र ड्रम बजाने, विद्यार्थियों की कतारें सीधी करने या सभा लंबी हो जाने पर अध्यापकों हेतु कुर्सियों का प्रबंध करते थे। गीत गाने में नेतृत्व की कमान लड़कियों के पास थी। माँ सरस्वती की प्रतिमा पर फूल-माला चढ़ाने का काम भी उन्हीं का था। लड़के-लड़कियों की कतारें पृथक्-पृथक् होती थीं। सभा समाप्त होने पर उन्हें कतारबद्ध होकर ही कक्षा में पहुँचना होता था पर देखा जा सकता था कि लड़कों की कतार अक्सर बीच में ही टूट जाती तो अचानक दूर से आती हुई व्यायाम शिक्षक की दहाड़ से फिर जुड़ जाती। कभी-कभार लड़कियों की पंक्ति भी बिखर जाती तो पास खड़े अध्यापकों के कथन होते -“तुम लड़कियों को तो कम-से-कम ऐसा नहीं करना चाहिए।” या फिर “लड़की होकर ऐसी बेशर्मी! मां-बाप ने

सिखाया नहीं कि कैसे आचार-व्यवहार करना है।” प्रार्थना सभा के आयोजन, संयोजन, क्रियान्वयन में लड़के-लड़कियों के बीच बंटे उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से संकेत करते थे कि हलके-फुलके काम, कलात्मक रूझानों के काम लड़कियों को करने हैं “तुम लड़कियों को भी नज़र नहीं आया कि ये काम भी होना है। कम-से-कम तुम से तो चूक नहीं होनी चाहिए थी।”

2. कला शिक्षा एवं कार्य शिक्षा की रूढ़िवादिता— भारतीय स्कूली शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हर आयोग व समिति ने कार्य अनुभव व कला शिक्षा को स्कूली शिक्षा के हर सोपान के लिए एक महत्वपूर्ण विषय माना है। इन विषयों के अंतर्गत विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न गतिविधियों में संलग्न किया जाता है। पाँचों विद्यालयों के अवलोकनों ने स्पष्ट किया कि गतिविधियों के चयन में वे समाज में जेंडर संबंधी प्रचलित नीतियों को आधार बनाते हैं, जैसे-लड़कियों से रंगोली बनाना, नींबू-पानी व ओआरएस घोल, बांधनी, ब्लॉक प्रिंटिंग, सिलाई-कढ़ाई, भित्ति सज्जा, फल संरक्षण जैसी गतिविधियाँ करवाई जाती हैं और लड़कों के लिए पतंग बनाना, बागवानी, बजट बनाना, कारपेंटरी, पुताई करना, स्क्रीन प्रिंटिंग, जिल्दसाजी जैसी गतिविधियाँ निर्धारित की गई हैं। अध्यापकों का स्पष्ट मत था कि “भला लड़कों को रंगोली, बांधनी जैसे कामों से क्या लेना-देना, उन्हें तो बाहर के ही काम सौंपे जाएँ।” इसी प्रकार जिल्दसाजी व बढईगीरी जैसे काम वे लड़कियों के लिए उचित नहीं मान रहे थे क्योंकि वे ‘लड़कियाँ’ हैं।

3. खेल के मैदान में विभेदीकरण का प्रभाव— खेल के मैदान का दो रूपों में अवलोकन किया गया। एक तो निर्देशित खेल की घंटी, दूसरा मध्यावकाश का समय। खेल की निर्देशित घंटी में व्यायाम शिक्षक जो सीटी व छड़ी के बगैर कभी नज़र नहीं आए लड़के-लड़कियों को अलग-अलग टोलियों में खेल खिलवाते थे। बेसबाल, खो-खो, बैडमिंटन लड़कियाँ खेलती थीं। कबड्डी, फुटबाल दौड़, क्रिकेट लड़के खेलते थे। खेल की अनिर्देशित घंटी व मध्यावकाश के समय जेंडर संस्कृति में छिपी ताकत का विभाजन स्पष्टतः नज़र आता था। आमतौर पर लड़के और लड़कियाँ अलग-अलग ही खेलते थे। कुछ चुलबुली और कद-काठी में बड़ी-सी दिखने वाली लड़कियाँ कभी-कभी लड़कों के साथ नज़र आई पर एक भय के साथ कि कहीं कोई शिक्षक उन्हें लड़कों के साथ खेलता हुआ देख न ले। खेल का मैदान एक आम मूक सहमति के आधार पर एक जेंडर समुदाय के उपयोग के लिए बंटा हुआ था। मसलन गेट और दीवार के आस-पास की जगहों पर लड़कों का अधिकार था। झूलों के आस-पास, क्यारियों व सीढ़ियों के आस-पास लड़कियों के झुँड देखे जा सकते थे। लड़कियों के खड़े होने के अंदाज़ से महसूस किया जा सकता था कि वे स्वच्छंदता का अनुभव नहीं कर पा रही हैं जबकि लड़के इस तरह के भाव प्रदर्शन से कोसों दूर थे। हवा आने पर अपने उड़ते दुपट्टे संभालना, बालों की लटें सँवारना, उन्मुक्त हँसी को दबाना, धीमी आवाज़ में बात

करना यह सब लड़कियों के संदर्भ में उनके आरंभिक समाजीकरण की अनुगूँजें ही थीं, जो विद्यालय में पोषित हो रही थीं जबकि लड़कों में एकदम बेपरवाही का अंदाज़ पाया गया।

4. कक्षागत व्यवस्था का अंदाज़—पहली घंटी से लेकर आखिरी घंटी तक कक्षा में बहुत-से काम होते हैं जो अध्यापक द्वारा कक्षा के कुछ चुने हुए बच्चों को सौंप दिए जाते हैं। ये चयनित बच्चे आमतौर पर बड़े डील-डौल वाले, तुलनात्मक रूप से आर्थिक संपन्नता वाली पृष्ठभूमि के और कुछ दबंग प्रवृत्ति के होते हैं। श्यामपट्ट साफ़ करना, कक्षा से कूड़ा-करकट उठाना, टाट-पट्टी/ कुर्सियों/बेंच की व्यवस्था करना, उपस्थिति पंजिका लाना व उपस्थिति लगाना लड़कियों के काम हैं। उपस्थिति लगाने का काम तो लड़कियों को खास तौर पर दिया जाता है क्योंकि “लड़कियाँ कुछ डरपोक-सी होती हैं, वे झूठी हाज़िरी कभी नहीं लगाएंगी।” अर्थात् लड़कियों की ईमानदारी को सद्गुण के रूप में न देखकर ‘डरपोक’ के रूप में देखना जेंडर विषमता का एक और भयानक स्वरूप है जो विद्यालयों में विराजमान है। अनुशासन संबंधी कार्य यथा कक्षा को चुप करवाना, कतारबद्ध करवाकर खेल या पी.टी. के लिए ले जाना आदि लड़कों के उत्तरदायित्व थे जो उनके ‘ताकतवर’ होने का सबूत देते थे। लड़कियों से पूछा गया कि क्या वे इस तरह के काम करने में सक्षम नहीं हैं? पहले तो सकुचाहट भरी चुप्पी छाई रही फिर कहा गया—“घर में भी तो पापा भैया के जिम्मे ही रहते हैं ये काम।” कहने का तात्पर्य यह है कि घर में

जेंडर आधारित बटवारे की व्यवस्था को झेल रही लड़कियाँ यहाँ भी उस विभाजन की त्रासदी को झेल रही थीं और अनजाने ही मान बैठी थीं कि वे ‘रौबिली’ हो ही नहीं सकतीं क्योंकि यह गुण तो लड़कों के लिए आरक्षित है।

5. शिक्षक रहित कक्षा का वातावरण—विद्यालय के पूरे दिन के कार्यक्रम में अक्सर ऐसा समय आता जब कक्षा में कोई भी शिक्षक न हो। (निश्चित रूप से अध्यापक की अनुपस्थिति के कारण या अध्यापक की प्रशासनिक कार्यों में व्यस्तता रहने के कारण ऐसा होता होगा) शिक्षक का कक्षा में न आना एक पर्व की भाँति होता है बच्चों के लिए। इस पर्व का उत्साह लड़के-लड़कियों दोनों पर दिखाई देता है पर उत्साहित होने के तरीके अलग-अलग होते हैं। लड़के कुर्सियाँ/बेंच पटकने, धक्का-मुक्की करने, पानी की बोतलों के पेंच लड़ाने, कागज़ के हवाई जहाज़ उड़ाने जैसे ‘ताकतवर’ कामों में व्यस्त दिखाई देते हैं, जबकि लड़कियाँ ‘होमवर्क’ करती हुई, जीरोकाटा खेलती हुई, एक दूसरे से गप लड़ाती हुई या श्यामपट्ट पर तस्वीर बनाती हुई देखी जा सकती हैं।

अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि विद्यालय संस्थागत व्यवस्था के रूप में जेंडर आधारित अलगाव को बढ़ावा दे रहे हैं। बच्चे जेंडर में बंटकर रोजमर्रा के कामकाजों को करना अपनी नियति मान रहे हैं। विभेदीकरण पर आधारित होने की वजह से कामकाज की व्यवस्थाएँ जेंडर भेदभाव और बच्चों में जेंडर

आधारित विभेदता की धारणा को वाजिब ठहराने के काम में आ रही हैं। विद्यालयों के अंदर होने वाले व्यवहारों के प्रतिरूप जेंडर असमानता के छुपे शिक्षाक्रम के लिए पृष्ठभूमि का काम कर रहे हैं। बच्चे अपनी जेंडर आधारित पहचान को संस्थागत तौर पर विद्यालय की छोटी-सी दुनिया में विद्यालय के 'जेंडर आधारित चश्मे' की मदद से देख-समझ और ग्रहण कर रहे हैं। उस जेंडर आधारित चश्मे से जो रोज़-ब-रोज़ के विद्यालयी जीवन में आमतौर पर होने वाले व्यवहारों, रोज़मर्रा के काम-काजों व नीतियों से बन रहा है।

विद्यालयी शिक्षा से सरोकार रखने वाले हम सभी व्यक्तियों के लिए इस बात की पहचान करना ज़रूरी है कि विद्यालय के अंदर होने वाली गतिविधियों और प्रशिक्षण प्रक्रियाओं के स्वरूपों के ज़रिए बच्चे घर की तुलना में ज़्यादा औपचारिक तरीके के साथ विभेदीकरण का शिकार हो रहे हैं। इस ज़रूरी चेतावनी के प्रति हम सभी को सतर्क होना होगा और जेंडर आधारित समतावादी विद्यालयीकरण की ओर बढ़ने के लिए अपनी समझ को टटोलना होगा।

भारत का राजनीतिक दर्शन

शंकर शरण*

अनेक विदेशी विद्वान भारत को आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत सभ्यता मानते हुए राजनीतिक क्षेत्र में सदा से दुर्बल देश मानते हैं। यह एक भ्रांति है। वस्तुतः, लगभग तीन हजार वर्ष पहले भी भारत में सुव्यवस्थित राजनीतिक व्यवस्था रही है। इसमें गणतंत्र, लोकतंत्र और राजतंत्र जैसे विविध रूपों के प्रमाण मिलते हैं। संपूर्ण भारत का राजनीतिक एकीकरण यहाँ कभी आवश्यक नहीं समझा गया था। इसके कई कारण थे। जैसे—आध्यात्मिक, सांस्कृतिक जीवन-दर्शन की प्रमुखता, राजनीति का गौण स्थान, भौगोलिक रूप से भारत की पारंपरिक सुरक्षित स्थिति, आदि। इन्हीं कारणों से हाल की शताब्दियों में विदेशी आक्रांताओं द्वारा भारत के विविध क्षेत्रों पर कब्जा कर लेना संभव हुआ। किंतु इसी से भारत के राजनीतिक दर्शन को सदा से हीन मानना भ्रामक है। श्री अरविन्द के विचारों पर आधारित यह लेख इसी बिंदु पर एक संक्षिप्त प्रस्तुति है।

बहुत-से लोग यह तो मानते हैं कि अध्यात्म, योग, आत्मा और मन जैसे गूढ़ विषयों में भारत की उपलब्धि महान रही है। किंतु वे व्यावहारिक जीवन, विशेषकर राजनीति और प्रशासन में भारत को विफल बताते हैं। उनका मत है कि यूरोप की तुलना में भारत अपने राज्य, शासन और प्रजा के जीवन को सुगठित करने में बहुत दुर्बल साबित हुआ है। इसके लिए लगभग एक हजार वर्ष की

विदेशी पराधीनता को प्रमाण के रूप में देखा-दिखाया जाता है।

(लेखक के अपने विचार)

यह सच है कि किसी संस्कृति की पहली मूल्यवत्ता मानव की आंतरिक सत्ता अर्थात् मन, अंतरात्मा और चेतना को उन्नत और विशाल बनाने की उसकी क्षमता में निहित है। किंतु निस्संदेह उसे सफल नहीं कहा जा सकता जब

*असिस्टेंट प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

तक वह बाह्य सत्ता उसके सामाजिक, राजनीतिक और भौतिक जीवन को भी गढ़कर महान आदर्शों की ओर अग्रसर होने के योग्य नहीं बनाती।

अतः प्रथम दृष्टि में ऐसा लग सकता है कि भारत का ज्ञान, हमारे महान पूर्वजों की मेधा हमें राजनीतिक रूप में सबल बनाने में विफल रही, क्योंकि हमें तरह-तरह के विदेशी आक्रमणकारियों से पराजित होना पड़ा। इतना ही नहीं, समय-समय पर देश के न्यूनाधिक भागों को अरबों, तुर्कों, मंगोलों और अंग्रेजों के अधीन भी रहना पड़ा। इस पर विवाद हो सकता है कि संपूर्ण भारत पर कभी किसी विदेशी सत्ता का अधिकार नहीं हो सका। यह भी कहा जाता है कि कई विदेशी अंततः भारतीय समाज में समाहित होकर यहीं के हो गए, कि भारतीय संस्कृति ने उन्हें नैतिक रूप से अभिभूत या पराभूत कर लिया, आदि। परंतु उत्तर-पश्चिम भारत का बड़ा हिस्सा विदेशी साम्राज्यवादियों के हाथ में चला गया, इस सत्य से आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं।

फिर भी, सरसरी तौर पर भारत को बाह्य-जीवन का संगठन करने में विफल बताना दोषपूर्ण है। यह भूतकाल का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण होता है। यह सच है कि भारत ने उस प्रतिद्वंद्वितापूर्ण और उत्पीड़क व्यवसायवाद का या स्वाधीनता और ढोंगपूर्ण जनतंत्र के संसदीय संगठन का विकास कभी नहीं किया जो यूरोपीय सभ्यता के हाल के बुरुजुआ या वैश्य-युग की विशेषताएँ हैं। पर यह भी सच है कि यूरोपीय उन्नति के मॉडल की अंध-प्रशंसा अब कम हो रही है और दिनों-दिन इसकी भयंकर त्रुटियाँ उजागर हो रही

हैं। अतः भारतीय सभ्यता की महानता को पश्चिमी प्रगति के मानदंड से नापने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यद्यपि पश्चिमी परिभाषाओं का प्रयोग करने पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय शासन प्रणाली में जनतंत्र का शक्तिशाली तत्व विद्यमान था। यहाँ तक कि ऐसी सभा-परिषदें भी थीं जो यूरोपीय पार्लियामेंट-पद्धति से साम्य प्रदर्शित करती हैं। परंतु ये विशेष तत्व भारत के अपने ढंग के थे। यह बिलकुल वह चीज नहीं थी जैसी कि आधुनिक संसदें और निर्वाचित जनतंत्र हैं। भारतीय राज्यतंत्र में लोक-भागीदारी अधिक सशक्त थी क्योंकि यह किसी राजा या सम्राट की इच्छा के अधीन या उसकी देन भी नहीं थी। भारतीय समाज का संपूर्ण संगठन एक सर्वोपरि धर्म-चेतना और धर्म-व्यवहार के अधीन रहा जिसमें राजा और प्रजा दोनों ही आते थे।

भारतवासियों के मन में प्राचीन काल से ही एक धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की प्रधानता रही है। भारतीय मानस की एक विशेषता रही है कि वह जीवन के सभी पक्षों, अत्यंत बाह्य सामाजिक और राजनीतिक व्यापारों को भी आध्यात्मिक अर्थ प्रदान करने और उनके लिए धर्म का अनुमोदन प्राप्त करने का यत्न करता था। यह सभी वर्गों और कार्यों के लिए एक अनिवार्य आदर्श की स्थापना करता था, जो कुछ प्रसंगों को छोड़कर अधिकारों और शक्तियों का नहीं, कर्तव्यों का आदर्श होता था। यह सदाचरण, कर्तव्यनिष्ठा ही यहाँ धर्म कहलाती रही है, न कि किन्हीं जड़-सूत्रों पर विश्वास। पश्चिमी

रिलीजन (Religion) से भारत का धर्म मूलभूत रूप से भिन्नार्थक है।

उसी धर्म और अध्यात्म प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप यहाँ समाज-व्यवस्था के शिखर पर ब्राह्मण, पुरोहित, पंडित, वेदज्ञानी और विधानकारों का स्थान रहा। इसे मनुष्यों के किसी वर्ग का प्रभाव समझना भूल होगी। इसे एक ज्ञानपरक और आचरणपरक धर्म के सर्वोपरि स्थान के रूप में समझना चाहिए। ज्ञान और आचरण रूपी इस धर्म भाव को जैसी सुनिश्चितता, स्थायित्व और महत्ता प्रदान की गई, वह विश्व में कहीं देखने में नहीं आती। जिन देशों में लोगों का मनोभाव भारत की अपेक्षा कम जटिल है, वहाँ इस प्रकार की प्रधानता का परिणाम संभवतः यह होता कि पंडित-पुरोहितों का ही राज कायम हो जाता। किंतु भारत में यद्यपि ब्राह्मणों का प्रभाव बढ़ता गया, फिर भी उन्होंने राज्यसत्ता पर कभी अपना अधिकार नहीं जमाया अथवा न जमा सके। राजा और प्रजा दोनों के अतिसम्मानित पुरोहितों और गुरुओं के रूप में उनका निश्चय ही बड़ा प्रभाव था, किंतु वास्तविक राज्यशक्ति राजा, क्षत्रिय वर्ग और जनसाधारण के हाथों में बनी रही।

बीच में एक ऐसा समय आया जब ऋषि को एक विशिष्ट और असाधारण पद दिया जाता था। ऋषि उस व्यक्ति को कहते थे जो उच्चतर आध्यात्मिक अनुभव और ज्ञान से संपन्न होते थे। वे किसी भी वर्ण में उत्पन्न हुए हो सकते थे (वशिष्ठ, परशुराम, व्यास, विदुर, आदि), पर अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व के बल पर सभी लोगों पर प्रभुत्व रखते थे। यह प्रभुत्व राजनीतिक

नहीं, मुख्यतः नैतिक था। साथ ही, यह राजनीतिक सत्ता के प्रति प्रतियोगी या नियंत्रणकारी भाव से सर्वथा मुक्त था। रामायण और महाभारत के आख्यानों में इसे देखा जा सकता है। पूरी समाज व्यवस्था एक नैतिक सामंजस्य के साथ स्वतः संचालित थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग के कर्तव्य, अधिकार और सीमाएँ दूसरे के साथ प्रतिद्वंद्विता में नहीं वरन सामंजस्य में स्थापित थीं।

दुर्भाग्य से प्राचीन भारतीय समाजों, राज्यों, गणराज्यों के संविधान और राज्य-तंत्र के विस्तृत विवरण हमारे पास नहीं हैं। उनके व्यवस्थित इतिहास से भी हम अनभिज्ञ हैं। इसका कारण यह है कि पश्चिमी यूरोपीय मानसिकता के विपरीत भारतीय मानसिकता इन ब्यौरों, तफ़्सीलों को तनिक भी महत्त्वपूर्ण नहीं समझती थी। इसीलिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि जीवन का विवरण तैयार करना और उसे संजोकर रखना हमारे महान पूर्वजों से लेकर आज तक भी हमारा मानस उपयोगी नहीं समझता। इसके पीछे भी तत्व-ज्ञान और सदाचरण को सर्वोपरि महत्ता देने वाली धर्म-चेतना ही है जो ऐसे कार्य को वह महत्त्व नहीं देती जो पश्चिमी मानसिकता देती है। फिर भी, तरह-तरह के अन्य विवरणों, आख्यानों, अभिलेखों, पुरातत्वों और विदेशियों द्वारा लिखित वर्णनों से इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि भारत का राजनीतिक संगठन उत्कृष्ट कोटि का था।

उदाहरण के लिए गौतम बुद्ध का एक मनोरंजक वचन मिलता है कि जब तक प्रजातांत्रिक संस्थाओं को उनके शुद्ध और

बलशाली रूप में सुरक्षित रखा जाएगा तब तक इस प्रकार एक छोटा-सा राज्य भी मगध के शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी राजतंत्र के शस्त्रास्त्रों से भी अजेय रहेगा² भारत में ऐसे सुदृढ़ और व्यवस्थित गणराज्य प्राचीन काल में ही स्थापित हो चुके थे और ईसा से पूर्व की छठी शताब्दी में पूरे ज़ोर-शोर से कार्यशील थे। अर्थात् वे यूनान के प्रसिद्ध नगर-राज्यों के समकालीन थे, पर भारतीय गणराज्यों की वह स्वाधीनता, प्रतिष्ठा और कार्यशीलता ईसा की आरंभिक शताब्दियों तक, अर्थात् दीर्घ काल तक बनी रही। जबकि यूनानी राज्य जल्द ही समाप्त हो गए थे।

वस्तुतः भारत ने राजनीतिक एकीकरण की आवश्यकता का कभी अनुभव ही नहीं किया था। तीन ओर से समुद्र और उत्तर में हिमालय से आच्छादित भारतवर्ष को सहस्राब्दियों तक किसी नितान्त विजातीय आततायी या विस्तारवादी, सर्वनाशकारी शत्रु से सुरक्षित करने की कभी आवश्यकता ही नहीं हुई थी। सिकंदर के आक्रमण के बाद पहली बार भारत ने एकीकृत शक्ति की आवश्यकता का अनुभव किया था। तब महसूस किया गया कि हमारे प्रजातांत्रिक गणराज्य ही देश के विभिन्न भागों के बीच विभाजन के कारण थे। अपने-आप में शक्तिशाली, स्वाभिमानी होते हुए भी वे संपूर्ण भारतवर्ष प्रायद्वीप के सचेत संगठन के लिए कुछ न कर सके। संभवतः प्राचीन काल में इतने विशाल प्रायद्वीप में छोटे-छोटे राज्यों के महासंघ की कोई व्यवस्था सफल हो भी नहीं

सकती थी विशेषकर जब इसकी आवश्यकता का कोई स्पष्ट कारण सबके सामने स्पष्ट न था।

यद्यपि समय के साथ अन्य देशों की तरह भारत में भी राजतंत्रात्मक राज्य-प्रणाली ही उन्नत होती गई। राजनीतिक संगठन के अन्य रूप पदच्युत होते गए। फिर भी मुसलमानों के आक्रमण से पहले तक भारतीय राजतंत्र किसी प्रकार भी एक व्यक्ति का स्वेच्छाचारी शासन या निरंकुश तानाशाही नहीं था। फ़ारस, मध्य एशिया, रोम या यूरोप के राजतंत्रों से इसका कोई साम्य न था। पठानों या मुगलों के शासनतंत्र से यह बिलकुल ही भिन्न प्रकार का था। यहाँ राजा की शक्ति व्यक्तिगत नहीं होती थी। तरह-तरह के संरक्षणों से यह परिवेष्टित रखा जाता था ताकि राजा इसका दुरुपयोग न कर सके।

भारत में राजा के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक अधिकारियों और विभिन्न हितों के प्रतिनिधियों की स्वाधीनता से भी राजा की शक्ति सीमा में रहती थी। (उदाहरण के लिए गुरुकुल और आश्रमों की नितान्त स्वाधीनता, जिनकी रक्षा राजा का कर्तव्य होता था) इस प्रकार, समाज के अन्य अधिकारी और प्रतिनिधि शासन-विधान के चालन और प्रभुता के प्रयोग में एक तरह से सहभागी होते थे। सच पूछें तो राजा एक सीमाबद्ध या संवैधानिक राजा होता था। जिस विचार और मशीनरी द्वारा राज्य के संविधान की रक्षा की जाती थी, राजा अपने अधिकारों का उपयोग करता था, और उसकी शक्ति सीमा में रहती थी-यह सब उससे बिलकुल भिन्न

प्रकार की थी जो यूरोप के इतिहास में पायी जाती है।

यहां राजा और सम्राटों से भी ऊपर था धर्म, अर्थात् धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक, न्यायिक और प्रधानगुत विधान जो लोगों के जीवन को मूलतः परिचालित करता था। इस निर्वैयक्तिक धर्म-सत्ता को इसके मूल भाव में तथा बाह्य रूप की समष्टि में पवित्र और सनातन माना जाता था। इसका मूल स्वरूप सदा एक ही रहता था ('एसो धम्मो सनंतनो'-बुद्ध), पर समाज के विकास के कारण इसके प्रत्यक्ष आकार में सहज-स्वाभाविक रूप से जो परिवर्तन आते थे उन्हें इसमें समाविष्ट कर लिया जाता था। देश, कुल सापेक्ष तथा अन्य आचार-धर्म इसकी देह के एक प्रकार के गौण और सहचारी अंग थे जिनमें केवल आंतरिक प्रेरणा से ही परिवर्तन होता था। मूल धर्म में हस्तक्षेप करने का किसी लौकिक सत्ता को निरंकुश अधिकार न था।

इस प्रकार, भारत में राजा का काम मनमाने नियम, कानून या दंड-विधान बनाने से अलग केवल धर्म की रक्षा करने का था। वह धर्म का रक्षक, परिचालक और सेवक होता था। उसका दायित्व ही था कि वह धर्म का पालन करवाए तथा हर प्रकार के अपराध उच्छृंखलता और धर्मोल्लंघन को रोके। चूँकि यह धर्म यूरोप के किताबी रिलीजन से नितान्त भिन्न था-सबके लिए आचरण की मर्यादा, न कि संगठित चर्च जैसे मजहबी संस्थानों द्वारा घोषित सुनिश्चित विश्वासों का अंध-अनुपालन कराया जाना-इसीलिए भारतीय राजनीतिक प्रणाली में धार्मिक अत्याचार

और असहिष्णुता के लिए कोई स्थान नहीं था। वस्तुतः जड़-सूत्रों और अंधविश्वास पर आधारित किसी प्रणाली की यहाँ कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। इसीलिए यहाँ राज्य या राज्यतंत्रीय अत्याचार, उत्पीड़न या स्वेच्छाचारिता का अस्तित्व नगण्य रहा है, जो यूरोप तथा अन्य देशों के इतिहास में सामान्य रूप से मिलता है।

भारत का नियम यह था कि यदि राजा भी धर्म को सच्चाई के साथ कार्यान्वित करना छोड़ दे तो प्रजा उसका पालन करने के लिए बाध्य नहीं होगी। प्रजा के संतोष के अनुसार शासन करने में अयोग्यता और अपने कर्तव्य का उल्लंघन उसे पदच्युत करने के लिए सिद्धांततः और कार्यतः पर्याप्त कारण होते थे। मनु और कई अन्य स्मृतिकारों ने चरम कोटि की स्थिति में राजविद्रोह और राजा को मार डालने तक के अधिकार या कर्तव्य का समर्थन किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि निरंकुश राजा या राजाओं को शासन करने के दैवी अधिकार का कोई सिद्धांत भारतीय राज्यप्रणाली में कभी न था। दक्षिण भारत में सत्रहवीं शताब्दी तक ऐसे दृष्टांत मिलते हैं जब किसी अप्रिय राजा को प्रजा ने संबंध-विच्छेद कर लेने की धमकी दी थी। उसमें सर्वसाधारण की सभा ने घोषित किया था कि उस राजा को दी गई कोई भी सहायता विश्वासघात के समान निंदनीय समझी जाएगी।³ निकृष्ट राजा को पद से हटाने के और भी सामाजिक उपाय प्रचलित थे। संक्षेप में, भारत में राजतंत्र शासन का केवल एक

प्रकार था। इसके लिए भी जनता का अनुमोदन आवश्यक समझा जाता था।

उपर्युक्त विवरण अत्यंत संक्षिप्त है। जिन्हें और विस्तार से जानने की इच्छा हो, उन्हें श्री अरविन्द कृत प्रसिद्ध रचना *भारतीय संस्कृति के आधार तथा संपूर्ण महाभारत* पढ़नी चाहिए। वर्तमान भारत की स्थिति और पूर्व काल से इसके संबंध के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि एक मनुष्य के स्थूल जीवन की भांति किसी समाज का जीवन भी जन्म, वृद्धि, यौवन, प्रौढ़ता और हास के चक्र से गुजरता है। इसकी अंतिम अवस्था यदि बहुत आगे बढ़ जाए और इसकी हासोन्मुखी धारा किसी प्रकार न रोकी जा सके तो समाज का जीवन भी उसी प्रकार नष्ट हो सकता है जैसे एक मनुष्य बुढ़ापे के बाद मर जाता है। अतः भारत के भविष्य के बारे में निर्णायक रूप से तो कुछ नहीं कहा जा सकता।

किंतु इतना सत्य है कि मनुष्यों की प्रत्येक जाति में एक आत्म-भावना या जीवन-भावना काम करती है जो उसके अदृश मनुष्यों के शरीर की अपेक्षा कम नश्वर है। अतएव जो जाति सजगता के साथ जीना सीख जाती है, वह संभवतः कभी भी नष्ट नहीं हो सकती। वह दूसरों में विलीन होकर समाप्त नहीं हो सकती। वह अपनी उसी चेतना के साथ बिना मरे कई नए जन्मों से गुजर सकती है। कभी ऐसा लगे कि वह नष्ट होने वाली है, तब भी अपनी आत्मा की शक्ति से वह पूर्वावस्था प्राप्त कर एक दूसरा तथा संभवतः अधिक गौरवशाली चक्र आरंभ कर सकती है। भारत का इतिहास ऐसी ही एक जाति का इतिहास रहा है। हमें इसके बारे में अपने स्रोतों से अधिक-से-अधिक अध्ययन-मनन करना चाहिए। यह हमारी शिक्षा और सामाजिक उत्थान के लिए हितकारी होगा।

संदर्भ

1. श्री अरविन्द: भारतीय संस्कृति के आधार (श्री अरविन्द आश्रम, पुदुच्चेरी, 2002 संस्करण, पृ. 363), यह प्रसिद्ध लेख-माला विदेशी आलोचकों को उत्तर देने के लिए सन् 1918-21 के बीच लिखी गई थी। इस निबंध में प्रस्तुत विचार उसी से लिए गए हैं।
2. वही, पृ. 365.
3. वही, पृ. 371.

शिक्षक-प्रशिक्षकों का सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रति दृष्टिकोण एवं इसकी सुगमता

राजेन्द्र पाल*

प्रस्तुत अध्ययन केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान के रजत जयंती वर्ष में देश के विभिन्न हिस्सों में आई.सी.टी. पर आयोजित व्याख्यान माला के अंतर्गत एकत्रित किए गए प्रदत्तों से निकाले गए निष्कर्ष पर आधारित है। लगभग 1500 शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षकों और प्रशिक्षणार्थियों ने एक प्रपत्र के माध्यम से अपने विचार इस विषय पर व्यक्त किए। इस शोध पत्र में शिक्षक-प्रशिक्षकों एवं प्रशिक्षणार्थियों के आई.सी.टी. और मीडिया के बारे में दृष्टिकोण की विवेचना की गई है। इस अध्ययन का एक उद्देश्य कम्प्यूटर और आई.सी.टी. की शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए सुगमता जानना भी था।

अध्ययन से पता चलता है, कि अधिकांशतः शिक्षक-प्रशिक्षकों के पास आधारभूत मीडिया की सुविधाएं हैं और उनके दृष्टिकोण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का महत्त्व शिक्षण अधिगम में बहुत अधिक है। परंतु प्रशिक्षकों का एक समूह यह नहीं जानता कि मीडिया या आई.सी.टी. का उपयोग किस तरह से शैक्षिक प्रक्रिया के अंग के रूप में करें तथा कुछ शिक्षक-प्रशिक्षक यह नहीं जानते कि उनके विषय में मीडिया और आई.सी.टी. आधारित सामग्री कहां से प्राप्त होगी। अप्रत्याशित रूप से अधिकांश शिक्षक-प्रशिक्षक तथा शिक्षक यह समझते हैं कि वे अपने विषय को बिना कम्प्यूटर की सहायता के पढ़ा सकते हैं। केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (सी.आई.ई.टी.) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.), नयी दिल्ली का एक अभिन्न अंग है। इसकी स्थापना 1984 में शिक्षण सहायक सामग्री विभाग और शिक्षा प्रौद्योगिकी

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, शोध प्रभाग, केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

संस्थान के विलय से हुई। हाल ही में सी.आई.ई. टी. ने अपना रजत जयंती वर्ष मनाया। इस अवधि में बहुत से क्रियाकलापों का आयोजन किया गया। शैक्षिक प्रौद्योगिकी विषय संबंधी व्याख्यान माला का आयोजन इनमें से एक मुख्य गतिविधि थी। इस गतिविधि में शैक्षिक प्रौद्योगिकी से संबंधित विभिन्न मुद्दों/प्रकरणों/प्रसंगों पर देश भर के विभिन्न शिक्षक शिक्षा संस्थानों में व्याख्यान आयोजित किए गए, जैसे-राज्य शिक्षा संस्थान, चंडीगढ़; क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, शिलांग; क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल तथा राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, पुडुचेरी आदि। जिन स्रोत व्यक्तियों ने इस व्याख्यान माला में व्याख्यान दिए, वह शिक्षा और शैक्षिक प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जाने-माने विशेषज्ञ थे। व्याख्यान माला में श्रोताओं के रूप में शिक्षकों/शिक्षक-प्रशिक्षकों और शिक्षक-प्रशिक्षुओं को आमंत्रित किया गया था। इस व्याख्यान माला में शैक्षिक प्रौद्योगिकी/आई.सी.टी. पर शिक्षकों/

शिक्षक-प्रशिक्षकों/शिक्षक प्रशिक्षुओं हेतु एक दृष्टिकोण प्रपत्र तैयार किया गया था। इसके दो मुख्य उद्देश्य थे। पहला-शैक्षिक प्रौद्योगिकी/आई.सी.टी. पर उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण जानना तथा दूसरा-यह जानना कि आई.सी.टी. की विभिन्न सुविधाएं किस सीमा तक उनकी पहुँच में हैं। उदाहरण के लिए अखबार, रेडियो, टी.वी. एवं कम्प्यूटर तक पहुँच, कम्प्यूटर का परिचय तथा शिक्षा/सीखने में कम्प्यूटर का उपयोग आदि। लगभग 1500 शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षकों और प्रशिक्षणार्थियों ने एक प्रपत्र के माध्यम से अपने विचार इस विषय पर व्यक्त किए।

विश्लेषण की सुविधा हेतु पूर्णतः असहमत और असहमत की आवृत्ति के प्रतिशतांकों को संयुक्त रूप से योग करके तथा पूर्णतः सहमत और सहमत के प्रतिशतांकों को संयुक्त रूप से योग करके तालिका में दिया गया है।

तालिका 1

शैक्षिक प्रौद्योगिकी/आई.सी.टी. तथा आई.सी.टी. की विभिन्न सुविधाओं तक उनकी पहुँच पर उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण

क्र. स.	कथन	पूर्णतः असहमत (पू.अ.)	असहमत (अ.)	पू. अ. तथा अ. का प्रतिशतांक	सहमत (स.)	पूर्णतः सहमत (पू.स.)	पू.स. तथा स. का प्रतिशतांक	संख्या
1.	मुझे पढ़ाने के लिए मीडिया और आई.सी.टी. का उपयोग करने में कोई रुचि नहीं है।	829	413	86.6	135	57	13.4	1434
2.	मुझे यह ज्ञात नहीं है कि मीडिया या आई.सी.टी. का उपयोग किस तरह से शैक्षिक प्रक्रिया के अंग के रूप में होगा।	433	543	68.9	398	42	31.1	1416

3.	मैं यह नहीं जानता/जानती कि मेरे विषय में मीडिया और आई.सी.टी. पर आधारित सामग्री कहाँ से प्राप्त होगी।	334	471	58.3	495	81	41.7	1381
4.	मुझे कक्षा में मीडिया या कम्प्यूटर का उपयोग करने का समय नहीं मिल पाता।	429	592	72.7	321	62	27.3	1404
5.	रेडियो और टी.वी. कार्यक्रमों में शिक्षा सम्मिलित नहीं है।	702	549	89.4	117	31	10.6	1399
6.	हमारे संस्थान में मीडिया एवं आई.सी.टी. की सुविधा नहीं है, इसलिए मैं शिक्षण में इसका उपयोग नहीं कर सका/सकी।	297	418	53.2	441	187	46.8	1343
7.	हमारे संस्थान में आई.सी.टी. की सुविधाएँ हैं, पर उन तक मेरी पहुँच नहीं है।	371	608	73.3	306	51	26.7	1336
8.	मैं कम्प्यूटर की सहायता के बिना भी अपने विषय का अच्छी तरह शिक्षण कर सकता/सकती हूँ।	157	442	43.0	649	145	57.0	1393
9.	मैं मीडिया और कम्प्यूटर का उपयोग करना पसंद करूँगा/करूँगी। यदि मुझे इनकी जानकारी हो।	89	182	20.3	689	375	79.7	1335
10.	मैं मीडिया और कम्प्यूटर का उपयोग तभी करूँगा/करूँगी। जब मुझे पदोन्नति या वेतन-वृद्धि का अवसर मिले।	474	508	71.2	280	118	28.8	1380
11.	शिक्षण में कम्प्यूटर और मीडिया के होने या न होने से कोई असर नहीं पड़ता।	621	645	90.3	104	32	9.7	1402
12.	पाठ को पढ़ाते समय जब मैं किसी भी मीडिया या आई.सी.टी.के उपकरण का उपयोग करता/करती हूँ तो मेरा कक्षा पर नियंत्रण नहीं रह पाता।	465	709	85.4	168	33	14.6	1375
13.	शिक्षार्थी मीडिया और कम्प्यूटर के द्वारा सीखना नहीं चाहते।	811	476	93.3	59	34	6.7	1380
14.	मैं मीडिया और कम्प्यूटर का उपयोग तभी करना चाहूँगा/चाहूँगी। यदि मुझे उनके प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाए।	61	125	13.3	639	574	86.7	1399
15.	मेरा काम शिक्षार्थियों को पढ़ाना है, न कि कम्प्यूटर और मीडिया का प्रयोग करना सीखाना।	518	559	77.3	209	108	22.7	1394

16.	आई.सी.टी. का उपयोग शिक्षण को रुचिकर बनाता है।	63	64	9.1	533	729	90.9	1389
17.	मुझे तकनीशियन या कम्प्यूटर ऑपरेटर की आवश्यकता है जो मीडिया और आई.सी.टी. का उपयोग करने में मेरी मदद कर सके।	145	416	40.5	630	195	59.5	1386
18.	आई.सी.टी. उच्च शिक्षा में उपयुक्त है, न कि विद्यालयी शिक्षा में।	449	722	83.6	178	52	16.4	1401
19.	कम्प्यूटर और इंटरनेट हमें सीखने का जो अनुभव दे सकते हैं, वह रेडियो और टी.वी. नहीं दे सकते।	136	325	32.7	625	323	67.3	1409
20.	मैं शिक्षण-अधिगम में मोबाइल प्रौद्योगिकी द्वारा नए आयामों को सीखना चाहता/चाहती हूँ।	73	141	15.1	642	560	84.9	1416

तालिका 1 का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है, कि 87% से अधिक शिक्षक-प्रशिक्षक अपने शिक्षण में मीडिया अथवा आई.सी.टी. का उपयोग करने में रुचि रखते हैं, जबकि 31% से अधिक यह नहीं जानते कि मीडिया और आई.सी.टी. को शिक्षण प्रक्रिया के अंग के रूप में कैसे उपयोग करें। लगभग 42% शिक्षक-प्रशिक्षक यह नहीं जानते, कि उनके विषय में मीडिया और आई.सी.टी. से संबंधित सामग्री कहाँ से प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त लगभग 27% शिक्षक-प्रशिक्षक महसूस करते हैं, कि उनके पास मीडिया और कम्प्यूटर को कक्षा में उपयोग करने का समय नहीं है। इस ओर गंभीर प्रयास करने की आवश्यकता है।

यह जानकर अच्छा लगता है, कि 90% उत्तरदाता समझते हैं, कि रेडियो और टी.वी. में शिक्षा की संभावनाएँ हैं। परन्तु साथ ही यह चिंता का विषय भी है, कि लगभग 53% शिक्षकों के

पास कक्षा में आई.सी.टी. की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। लगभग 73% शिक्षक-प्रशिक्षकों ने यह दर्शाया कि उनकी अपनी संस्थान में उपलब्ध आई.सी.टी. की सुविधाओं तक पहुँच है, परन्तु यह विचारणीय विषय है कि 57% शिक्षक-प्रशिक्षक समझते हैं, कि वह अपना विषय बिना कम्प्यूटर की सहायता के भी अच्छी तरह से पढ़ा सकते हैं। जबकि 80% शिक्षक-प्रशिक्षक, जो कम्प्यूटर और मीडिया को नहीं जानते, लेकिन मानते हैं कि वे इसका उपयोग करेंगे अगर उन्हें इनका प्रशिक्षण दिया जाए। लगभग 29% शिक्षक-प्रशिक्षक मीडिया और आई.सी.टी. के उपयोग को पदोन्नति से जोड़ कर देखते हैं और मानते हैं, कि पदोन्नति मिलने की स्थिति में वह इसका उपयोग अपनी कक्षा में करेंगे। जबकि 90% उत्तरदाताओं का मानना है कि, मीडिया और आई.सी.टी. के होने या न होने से शिक्षण में अंतर आता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षक-प्रशिक्षक और प्रशिक्षु दोनों

समझते हैं, कि कम्प्यूटर और मीडिया का उपयोग शिक्षण को प्रभावी बनाता है।

शिक्षकों का एक बहुसंख्यक समुदाय (85%) कक्षा में मीडिया और आई.सी.टी. का उपयोग करते समय कक्षा पर पूर्ण नियंत्रण रखता है और यह भी मानता है कि शिक्षार्थी मीडिया और कम्प्यूटर के माध्यम से सीखना चाहते हैं।

यह संज्ञान में लेने वाली बात है कि 87% शिक्षक यह स्वीकारते हैं कि यदि उन्हें मीडिया और कम्प्यूटर के उपयोग का प्रशिक्षण दिया गया तो वह अपने दिन-प्रतिदिन के शिक्षण में इसका उपयोग करेंगे। इसी धारणा को ध्यान में रखते हुए लगभग 60% शिक्षक-प्रशिक्षकों ने संप्रेषित किया कि उन्हें कम्प्यूटर के उपयोग हेतु एक तकनीशियन अथवा कम्प्यूटर ऑपरेटर की सहायता की आवश्यकता है। संभवतः इसी कारण से 84% शिक्षक-प्रशिक्षक यह विश्वास रखते हैं कि आई.सी.टी. उच्च शिक्षा की तरह ही विद्यालयी शिक्षा के लिए भी उपयुक्त है।

77% प्रशिक्षक इस बात से असहमत है कि मेरा काम शिक्षार्थियों को पढ़ाना है, न कि कम्प्यूटर या मीडिया के साथ प्रयोग करना। लगभग 91% यह मानते हैं, कि आई.सी.टी. का उपयोग शिक्षण को रुचिकर बनाता है।

67% शिक्षक यह सोचते हैं, कि कम्प्यूटर और इंटरनेट से जो अनुभव प्राप्त होते हैं, वह रेडियो और टी.वी. से प्राप्त नहीं हो पाते। जबकि 85% शिक्षक मोबाइल तकनीकी के द्वारा शिक्षण अधिगम के नए आयामों को सीखना चाहते हैं।

अखबार, रेडियो और टी.वी. तक पहुँच (Access to Newspapers, Radio and Television)

शिक्षक-प्रशिक्षकों की अखबार, रेडियो और टी.वी. तक पहुँच पर एकत्रित प्रदत्तों का विवरण तालिका 2 में दिया गया है:

तालिका 2

शिक्षक-प्रशिक्षकों की अखबार, रेडियो और टी.वी. तक पहुँच, आवृत्ति एवं प्रतिशत का विवरण

क्र. स.	अखबार, रेडियो और टी.वी. तक पहुँच	आवृत्ति	प्रतिशत %
1.	केवल अखबार	28	01.90
2.	केवल रेडियो	05	00.35
3.	केवल टी.वी.	20	01.38
4.	अखबार और रेडियो	37	02.60
5.	अखबार और टी.वी.	384	26.50
6.	रेडियो और टी.वी.	31	02.14
7.	तीनों (अखबार, रेडियो और टी.वी.)	944	65.50
	योग	1449	

तालिका 2 को देखने पर ज्ञात होता है, कि अखबार, रेडियो और टी.वी. तीनों अधिकांशतः शिक्षक-प्रशिक्षकों (65%) की पहुँच में है। ऐसे शिक्षक-प्रशिक्षक बहुत ही कम हैं, जिनकी पहुँच में केवल अखबार, केवल रेडियो अथवा केवल टी.वी. है।

तालिका 2 से यह भी ज्ञात होता है, कि केवल अखबार और टी.वी. लगभग 27% शिक्षक-प्रशिक्षकों की पहुँच में है।

कम्प्यूटर तक पहुँच (Access to computer)

शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए कम्प्यूटर की सुगमता (accessibility) को ज्ञात करने हेतु सात आयामों पर प्राप्त प्रदत्तों को तालिका 3 में दिया गया है:

तालिका 3

शिक्षक-प्रशिक्षकों की कम्प्यूटर तक पहुँच
आवृत्ति एवं प्रतिशत का विवरण

क्र. स.	कम्प्यूटर तक पहुँच	आवृत्ति	प्रतिशत %
1.	कम्प्यूटर के लिए मेरी पहुँच न तो घर पर है और न ही कियोस्क/साइबर कैफ़े पर।	171	6.28
2.	कम्प्यूटर के लिए मेरी पहुँच कियोस्क/साइबर कैफ़े तक है।	207	7.60
3.	मेरे घर पर कम्प्यूटर है।	595	21.85
4.	स्कूल/ऑफिस के कम्प्यूटर तक मेरी पहुँच है।	574	21.08
5.	इंटरनेट के लिए मेरी पहुँच साइबर कैफ़े तक है।	406	14.91
6.	घर पर इंटरनेट मेरी पहुँच में है।	345	12.67
7.	स्कूल/ऑफिस के इंटरनेट तक मेरी पहुँच है।	425	15.61
	योग	2723	

टिप्पणी: उत्तरदाताओं की संख्या 1466 है। यद्यपि कुछ उत्तरदाताओं ने एक से अधिक विकल्पों का चुनाव किया है। अतः कुल आवृत्ति 2723 हो गई है।

तालिका 3 से यह ज्ञात होता है कि केवल 21% शिक्षक-प्रशिक्षकों के पास घर पर ही

कम्प्यूटर की सुविधा है। लगभग इतने ही प्रतिशत उत्तरदाताओं की पहुँच ऑफिस अथवा शिक्षा संस्थान के कम्प्यूटर तक है।

तालिका 3 से यह भी पता चलता है कि केवल 12% शिक्षक-प्रशिक्षकों के घर पर इंटरनेट की सुविधा है, तथा 15% शिक्षकों को उनके ऑफिस अथवा शिक्षा संस्थानों में इंटरनेट पर काम करने की सुविधा है। तालिका से यह भी विदित होता है, कि लगभग 15% शिक्षक-प्रशिक्षकों को इंटरनेट के लिए साइबर कैफ़े का उपयोग करना पड़ता है।

कम्प्यूटर से परिचय

(Familiarity with computers)

कम्प्यूटर से परिचय की सीमा (Limit) जानने के लिए शिक्षकों/शिक्षक-प्रशिक्षकों को कुछ विकल्प दिए गए थे। उन्हें दिए गए विकल्पों का चयन करने के लिए स्पष्ट निर्देश दिए गए थे तथा उन्हें एक से अधिक विकल्प चयन की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी। उनके द्वारा चयनित विकल्पों को तालिका 4 में दर्शाया गया है:

तालिका 4

कम्प्यूटर का परिचय, आवृत्ति
एवं प्रतिशत का विवरण

क्र. स.	कम्प्यूटर तक पहुँच	आवृत्ति	प्रतिशत %
1.	मैंने कम्प्यूटर कभी नहीं देखा।	34	0.86
2.	मैंने कम्प्यूटर का कभी उपयोग नहीं किया।	120	3.04

3.	मैंने कम्प्यूटर का उपयोग केवल एक पेज टाइप करने में किया है।	300	7.59
4.	मैं कम्प्यूटर का उपयोग गेम्स खेलने में करता/करती हूँ।	437	11.06
5.	मैं कम्प्यूटर और उसके पैकेज से परिचित हूँ।	526	13.31
6.	मैं विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम से परिचित हूँ।	629	15.92
7.	मैं जानता/जानती हूँ, कि इंटरनेट क्या है?	755	19.11
8.	मेरा ई-मेल (E_mail ID) पता है।	583	14.76
9.	मैं ई-मेल का उपयोग अपने मित्रों से संवाद के लिए करता/करती हूँ।	567	14.35
	योग	3951	

टिप्पणी: उत्तरदाताओं की संख्या 1466 है। यद्यपि कुछ उत्तरदाताओं ने एक से अधिक विकल्पों का चयन किया है। अतः कुल आवृत्ति 3951 हो गई है।

तालिका 4 को देखने पर यह ज्ञात होता है, कि केवल 16% उत्तरदाता कम्प्यूटर विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम से परिचित है। लगभग 19% शिक्षक/शिक्षक-प्रशिक्षक जानते हैं, कि इंटरनेट क्या है? जबकि इनमें से केवल 14% के पास ई-मेल (E_mail ID) पता है, और स्वाभाविक रूप से इतने प्रतिशत लोग ही ई-मेल का उपयोग अपने मित्रों से संवाद के लिए करते हैं।

शिक्षा/सीखने के लिए कम्प्यूटर के उपयोग का परिचय

(Familiarity with use of computers for education/ learning)

शिक्षा/सीखने के लिए कम्प्यूटर के उपयोग के

परिचय पर शिक्षकों/शिक्षक-प्रशिक्षकों की प्रतिक्रियाएं तालिका 5 में दी गई हैं।

तालिका 5

शिक्षा/सीखने के लिए कम्प्यूटर के उपयोग का परिचय, आवृत्ति एवं प्रतिशत का विवरण

क्र. स.	शिक्षा/सीखने के लिए कम्प्यूटर के उपयोग का परिचय	आवृत्ति	प्रतिशत %
1.	मैं प्रायः इंटरनेट का उपयोग करता/करती हूँ।	558	23.79
2.	स्कूल/कॉलेज के गृहकार्य/ प्रोजेक्ट हेतु कम्प्यूटर का उपयोग करता/करती हूँ।	694	29.58
3.	स्कूल/कॉलेज के प्रोजेक्ट के लिए मैं इंटरनेट की मदद लेता/लेती हूँ।	589	25.11
4.	सीखने के लिए सी. डी./डी. वी. डी. उपयोग करता/करती हूँ।	310	13.21
5.	मैं लर्निंग साइट का/की उपभोक्ता हूँ।	195	8.31
	योग	2346	

टिप्पणी : उत्तरदाताओं की संख्या 1466 है। यद्यपि कुछ उत्तरदाताओं ने एक से अधिक विकल्पों का चयन किया है अतः कुल आवृत्ति 2346 हो गई है।

तालिका 5 में दिए गए तथ्यों का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि अधिकांशतः (30%) शिक्षक/शिक्षक-प्रशिक्षक/ प्रशिक्षार्थी संस्थान अथवा परियोजना के कार्य हेतु कम्प्यूटर का उपयोग करते हैं। लगभग 25% शिक्षक-प्रशिक्षक इस कार्य के लिए इंटरनेट की भी मदद लेते हैं तथा करीब-करीब इतने ही शिक्षक-प्रशिक्षक प्रायः अन्य कार्यों में भी इंटरनेट

का उपयोग करते हैं। केवल 8% शिक्षक-प्रशिक्षक ही किसी लर्निंग साइट के उपभोक्ता हैं।

निष्कर्ष

अध्ययन के परिणामों से ज्ञात होता है, कि शिक्षकों एवं शिक्षक प्रशिक्षकों के दृष्टिकोण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का महत्व शिक्षण अधिगम में बहुत अधिक है। परंतु प्रशिक्षकों का एक समूह यह नहीं जानता कि मीडिया या आई.सी.टी. का उपयोग किस तरह से शैक्षिक प्रक्रिया के अंग के रूप में करें। अप्रत्याशित रूप से कुछ शिक्षक-प्रशिक्षक यह नहीं जानते कि उनके विषय में मीडिया और आई.सी.टी. आधारित सामग्री कहाँ से प्राप्त होगी।

एक तरफ तो शिक्षकों का तीन चौथाई भाग यह स्वीकार करता है कि उनकी संस्था/महाविद्यालय में आई.सी.टी. की सुविधाएं उपलब्ध हैं, परंतु दूसरी तरफ यह सरोकार सामने आता है कि लगभग 60% शिक्षक-प्रशिक्षक तथा शिक्षक कम्प्यूटर के उपयोग को शिक्षण में बहुत महत्वपूर्ण नहीं समझते। कुछ शिक्षक आई.सी.टी. और मीडिया के उपयोग को पदोन्नति और वेतन वृद्धि से जोड़ कर देखते हैं। उनके अनुसार वे मीडिया और आई.सी.टी. का कक्षा में उपयोग करेंगे यदि इसके लिए उन्हें पदोन्नति/वेतन वृद्धि दी जाए।

अधिकांश शिक्षकों ने बताया कि आई.सी.टी. एवं मीडिया का कक्षा में उपयोग करते समय वे कक्षा को पूर्ण नियंत्रण में रखते हैं। यह जानना

रुचिकर होगा कि शिक्षकों का एक बड़ा भाग मानता है कि कम्प्यूटर और इंटरनेट से जो अधिगम अनुभव प्राप्त होते हैं वे रेडियो और टी.वी. से नहीं हो पाते। यह भी ध्यान देने योग्य है कि शिक्षक-प्रशिक्षक मोबाइल टेक्नोलॉजी के माध्यम से शिक्षण-अधिगम के नए आयामों को सीखना चाहते हैं।

अधिकांशतः शिक्षक-प्रशिक्षकों के पास आधारभूत मीडिया की सुविधाएँ हैं। आँकड़ों से यह भी पता चलता है कि जिन शिक्षक-प्रशिक्षकों के पास घर अथवा ऑफिस में कम्प्यूटर की सुगमता है, उन्हें कुछ सीमा तक इंटरनेट की सुगमता भी है। बहुत कम शिक्षकों-प्रशिक्षकों के पास ई-मेल का पता है और वे अपने मित्रों तथा साथियों के साथ संवाद में इसका उपयोग करते हैं।

यह ध्यान देने योग्य है कि बहुत थोड़े से ही शिक्षक-प्रशिक्षक किसी लर्निंग साइट के ग्राहक हैं। अंत में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आई.सी.टी. की सुविधाओं को शिक्षकों/शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा प्रशिक्षणार्थी के लिए और अधिक सुगम बनाने की आवश्यकता है। कम्प्यूटर और आई.सी.टी. से और अधिक परिचित कराने हेतु जागरूकता कार्यक्रम करने की आवश्यकता है। हर अवस्था पर शिक्षण प्रशिक्षण के सभी कार्यक्रमों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी तथा आई.सी.टी. को जोड़ने की आवश्यकता है।

संदर्भ

<http://education.nic.in/secedu/ict.pdf> National Policy on Information and Communication Technology (ICT) In School Education.

<tp://www.unesco.org/new/index> ICT in Education.

http://data.undp.org.in/hdrc/thematicResource/Poverty/ict_mdg_wb.pdf
ICT and MDGs a World Bank Group perspectives.

एन.सी.ई.आर.टी., 2006, *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 शैक्षिक प्रौद्योगिकी*, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, नयी दिल्ली.

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की शैक्षिक विचारधारा

रश्मि श्रीवास्तव*

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एक महान देशभक्त तथा राजनीतिज्ञ थे। भारत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भी उन्होंने अतुलनीय योगदान दिया। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था भारतवर्ष का उत्कर्ष। इसके लिए उन्होंने शिक्षा को एक महत्वपूर्ण साधन माना। वह भारत में ऐसी शिक्षा व्यवस्था के समर्थक थे जो बालक का सर्वांगीण विकास कर उसे जीवन संघर्ष के लिए तैयार कर और छात्रों में आध्यात्मिक भावना के समावेश से उन्हें उत्तम चरित्र का स्वामी बनाकर कर्तव्यनिष्ठ बनाए और जनकल्याणकारी कार्यों के लिए प्रेरित करे।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को हम एक राष्ट्रभक्त राजनीतिज्ञ के रूप में जानते हैं जिनके ओजपूर्ण भाव के साथ कहे गये शब्द “स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा” आज भी भारतीय जनमानस में स्वाभिमान का भाव पैदा कर देते हैं। तिलक को राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में उग्रवादी राजनीति का अग्रदूत माना जाता है। श्री अरविन्द ने कहा था कांग्रेस के आंदोलन में न कोई तरीका था, न चरित्र, न योजना। उसमें कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग लगे

हुए थे जिनके आदर्श पाश्चात्य थे। इस आंदोलन की जड़ें, न अतीत में थीं न वर्तमान में। तिलक पहले राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने अतीत से वर्तमान को मिलाया। यही कार्य उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में भी किया। उन्होंने जहाँ लॉर्ड कर्जन के निरंकुश, अपमानजनक साम्राज्यवाद को सहन नहीं किया वहीं उनके द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था को भी स्वीकृति नहीं दी। राजनीतिक स्तर पर उनके द्वारा प्रसारित स्वदेशी का संदेश शिक्षा के क्षेत्र में भी स्वीकारा गया। वे शिक्षा के माध्यम से देशवासियों

*विभागाध्यक्ष, (बी.एड.) हीरा लाल यादव बालिका डिग्री कॉलेज, सरोजनी नगर, लखनऊ

का चरित्र निर्माण करते हुए उनको संगठित करना चाहते थे।

शिक्षा संबंधी उनके विचारों की विवेचना के क्रम में सर्वप्रथम उनके जीवनवृत्त पर एक दृष्टि डालना उपयुक्त होगा।

प्रारंभिक जीवन तथा शिक्षा

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक बलवन्त राव गंगाधर तिलक के पुत्र थे। उनका जन्म महाराष्ट्र के कोंकण जिले के रत्नागिरि स्थान पर 23 जुलाई 1856 को हुआ था। तिलक के पिता श्री गंगाधर पन्त शिक्षा विभाग में कार्य करते थे। गणित और संस्कृत के प्रति उनके हृदय में बड़ा लगाव था जो कि आगे चलकर उनके पुत्र में भी प्रकट हुआ। बाल्यकाल में ही तिलक की बुद्धि व तेजस्विता के उदाहरण मिलने लगे थे। उनकी स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। उनकी माता श्रीमती पार्वती बाई धार्मिक विचारों की महिला थीं जिसकी स्पष्ट छाप तिलक के व्यक्तित्व पर पड़ी और वे जीवन भर हिन्दू संस्कृति व हिन्दू धर्म के उपासक रहे। दस वर्ष की अल्प आयु में उन्हें माता की मृत्यु का सामना करना पड़ा था। 15 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह तापी बाई से हुआ और सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने जीवन की एक अन्य दुखद घटना का सामना किया। उनके पिता उनके बीच नहीं रहे। अर्थात् अपने जीवन की अल्पावस्था में ही उन्होंने अनेक कष्टों का सामना किया, किन्तु धैर्य व सहनशीलता के साथ निरंतर अध्ययनरत रहे। पिता की मृत्यु के पश्चात चाचा गोविन्द राय के सानिध्य में उनका

लालन-पालन हुआ। सन् 1876 में बी.ए. तथा सन् 1879 में उन्होंने कानून की परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा प्राप्ति के साथ ही उन्होंने सरकारी नौकरी में प्रवृत्त ना होने का प्रण भी किया।

शिक्षक जीवन में प्रवेश तथा सामाजिक राजनीतिक सक्रियता

सरकारी नौकरी पर दृष्टि न होने के कारण उनके पास कार्य की अपार सम्भावनाएँ थीं। उन्होंने अपना प्रथम कार्यक्षेत्र शिक्षा को चुना और विष्णु शास्त्री के साथ मिलकर सन 1980 में पूना में न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना की। इस स्कूल में उन्होंने 1 वर्ष तक अवैतनिक अध्यापक के रूप में कार्य किया। 1881 में गोपाल राव आगरकर, नाम जोशी और चिपलूणकर के साथ उन्होंने मराठा तथा केसरी पत्रों का संचालन प्रारम्भ किया। 1882 में कोल्हापुर के दीवान के विरोध में तीन पत्रों को छापने के कारण तिलक और आगरकर को चार महीने कैद की सजा हुई। यहाँ दीवान के अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने के कारण मराठी जनता के हृदय में तिलक के प्रति आदर व सम्मान की भावना भी जागृत हुई। वह मराठी जनता के प्रिय बन गये। 1884 में डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी (Deccan Education Society) की स्थापना के बाद 1885 में फर्ग्युसन कॉलेज (Ferguson College) खोला गया तिलक ने 5 वर्षों तक इस कॉलेज में संस्कृत और गणित का अध्यापन किया।¹ आदर्श चरित्र, व्यवहार की गंभीरता तथा विषय की विद्वता के

कारण वह एक आचार्य के रूप में श्रद्धा के पात्र हुए। यद्यपि आगे चलकर उन्होंने इस सोसाइटी से त्यागपत्र दे दिया और मराठा व केसरी पत्रों के संपादन में तल्लीन हो गये। हिन्दुओं में निर्भयता और संघर्ष शक्ति की भावना को जागृत करने के उद्देश्य से 1893 में उन्होंने गणपति उत्सव की शुरुआत की। आगे चलकर यह सामूहिक गणपति उत्सव महाराष्ट्र में अत्यंत जनप्रिय हो गया। इससे उत्साहित होकर 1895 में बाल गंगाधर तिलक ने मराठा स्वराज्य के जनक शिवाजी की देशभक्ति और आत्म सम्मान की याद, सामान्यजन में ताजा करने के उद्देश्य से शिवाजी उत्सव को आरंभ किया। इन उत्सवों के माध्यम से जनता में उत्साह, आपसी भाईचारा तथा अपने स्वयं की संस्कृति के प्रति गौरव का भाव जाग सका। तिलक अपनी दूरदृष्टि से इस बात का सही अनुमान लगा सके कि धार्मिक पर्वों पर एकत्रित होकर वीर पूजा करना भी राष्ट्र के उद्धार व राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायक हो सकता है। तिलक तथा गोखले दोनों ही 1889 में कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होते रहे थे अतः वे राजनीतिक क्षेत्र में भी सक्रिय रहे। 1896 में पश्चिम भारत में पड़े भीषण अकाल में वह सामान्य जनता के सहायतार्थ खड़े दिखे। 1897 में बम्बई और पूना में प्लेग और महामारी फैल जाने पर उन्होंने सहायता कार्य गठित किए। रोग के संक्रमण की चिंता किए बगैर, जनता की सेवा में वह स्वयं आगे आए, इसी बीच प्लेग की रोकथाम के लिए प्लेग कमिश्नर रेण्ड ने साफ-सफ़ाई के नाम पर जनता पर अलग तरह का

दबाव बनाना शुरू किया। इस कार्यक्रम के प्रति उसकी स्वेच्छाचारी नीति जनता के लिए अत्यंत कष्टकारी थी। तिलक ने उसकी इस नीति का खुले शब्दों में विरोध किया। 22 जून 1897 को दामोदर चाकेकर द्वारा रैण्ड और आर्यस्ट की हत्या कर दी गयी जो कि जनता के असंतोष का परिणाम था।² तिलक गिरफ्तार हो गए इस घटना से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंध स्थापित ना होने के बावजूद, अंग्रेज़ सरकार ने उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया और उन्हें 18 माह के कठोर कारावास की सजा दी। यद्यपि ज्यूरी के सर्वसम्मति के अभाव में दिया गया यह निर्णय न्याय के विरुद्ध था। सजा का आधार शिवाजी उत्सव पर दिये गये केसरी के प्रकाशित व्याख्यान को बनाया गया। इस सजा से सारा देश स्तब्ध था। तिलक ने किसी भी प्रकार की क्षमायाचना से इंकार करते हुए कारावास को स्वीकार किया। 18 माह पश्चात कारावास से मुक्त होने के बाद वह एक वीर योद्धा के समान पुनः सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हो गए। करन्दीन्दर ने उन्हें आधुनिक भारत का हरक्यूलिज तथा प्रोमेथियस कहा था।³

माण्डले कारावास तथा छह वर्षीय निर्वासित जीवन

1905 में एक बार पुनः अपनी स्वेच्छाचारी नीति का परिचय देते हुए अंग्रेज़ी सरकार ने बंगाल के विभाजन का निर्णय लिया। पूरे देश में उनके इन निर्णय के प्रति असंतोष था। तिलक ने इस असंतोष को आवाज़ दी। उन्होंने एक राष्ट्रनायक का रूप धारण कर बंगाल विभाजन के विरोध में

किए जा रहे आंदोलनों को राष्ट्रीय-दासता-विमोचन आंदोलन का रूप दे दिया। स्वराज्य, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षण और बहिष्कार के कार्यक्रमों से पूरा देश अंग्रेज सरकार की दमनकारी नीति के विरोध में उठ खड़ा हुआ। स्वदेशी आंदोलन की उग्रता और वेग को देखकर अंग्रेज सरकार ने अपनी नीतियों में सुधार के बजाए अपनी पूरी शक्ति इस आंदोलन को दबाने में लगा दी। अंग्रेजों के शक्ति प्रदर्शन व भारतीयों के विरोध की पराकाष्ठा 1908 के मुजफ्फरपुर बम काण्ड के रूप में हुई।¹ खुदीराम बोस द्वारा जिला मजिस्ट्रेट किंग्स फोर्ड की गाड़ी पर फेंके गए बम का खुला समर्थन न करने के बावजूद तिलक केसरी के माध्यम से क्रांतिकारी आंदोलनों का समर्थन करते रहे थे। इन लोगों तथा सरकार की आबकारी नीति के विरोध प्रदर्शन को आधार बनाकर एक बार पुनः तिलक पर अंग्रेज सरकार द्वारा संगीन मुकदमा चलाया गया। तिलक की खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, श्याम जी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर आदि क्रांतिकारियों से सहानुभूति थी। अंग्रेज सरकार ने इस मुकदमे में तिलक की जमानत तक ना होने दी। तिलक ने स्वयं अपनी पैरवी करते हुए इस मुकदमे के बीच 21 घंटे का भाषण दिया किन्तु शक्ति के मद में चूर अंग्रेजी सियासत में मानवाधिकारों की कोई सुनवाई न थी। तिलक के प्रभाव व जनता पर उनकी सीधी पकड़ से डरी हुई सरकार उन्हें किसी भी तरह जनता के बीच नहीं आने देना चाहती थी। ब्रिटिश प्रशासकों की नीति किसी भी प्रकार तिलक को जेल अथवा विदेश में स्थापित कर देने की थी।

अंततः उन्हें छह वर्ष के निर्वासित जीवन का दंड देते हुए बर्मा के माण्डले जेल भेज दिया गया। इसे उन दिनों काले पानी की सजा कहा जाता था। उनके जेल जाने के बाद उग्र दल छिन्न-भिन्न हो गया।

तिलक छह वर्ष तक माण्डले जेल में रहे। इन वर्षों में उनके शरीर ने अपार क्षति झेली। शारीरिक कष्टों ने उन्हें असमय वृद्ध कर दिया किंतु ये कुछ वर्ष उन्होंने एक ऋषि के समान साधना में बिताए और मानसिक दृढ़ता को और परिपक्व किया। उन्होंने अपने मानसिक बल से शारीरिक कष्टों पर विजय पाई। स्वयं के लिए निर्वासित जीवन की सजा की घोषणा के समय ही उन्होंने कहा था, यद्यपि ज्यूरी ने मुझको अपराधी बताया है, तथापि मेरी अंतरात्मा कहती है कि मैं निर्दोष हूँ। संसार चक्र को चलाने वाले मानवों से ऊपर विराट शक्तियाँ हैं। करुणामय विधाता का यही प्रयोजन हो सकता है कि मेरे कष्ट सहन में ही वह उद्देश्य, जिसका मैं प्रतिनिधित्व करता हूँ, अधिक तेजस्वी बनें। इस जनकल्याणकारी भावना के साथ उन्होंने जेल की सजा पूरी की। इस कारावास में ही उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ गीता रहस्य की रचना की। यह अनमोल कृति 1915 में उनके जेल से छूटने के बाद प्रकाशित हुई। जून 1914 में यह महान राष्ट्र योद्धा जब जेल से छूटा तो ऐसा प्रतीत होता था मानो उनके देश प्रेमी हृदय में ऋषित्व का प्रवेश हो गया हो। जेल से छूटने के बाद हिम्मत हारे बगैर वह पुनः सार्वजनिक-राजनीतिक जीवन में प्रविष्ट हुए। पूरे देश ने उनका खुले दिल से स्वागत किया। यद्यपि

उनकी धर्मपत्नी उनका स्वागत करने हेतु प्रस्तुत ना थी। माण्डले कारावास की अवधि पूर्ण होने के दो वर्ष पूर्व ही उनका देहांत हो चुका था। तिलक ने इन सभी उतार-चढ़ाव के बीच अपने मन तथा मस्तिष्क को संयमित कर हमारे बीच एक आदर्श प्रस्तुत किया।

स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है उद्घोषणा तथा प्रहार

बाल गंगाधर तिलक के जीवन का मुख्य उद्देश्य था भारतवर्ष का उत्कर्ष। इस उत्कर्ष में वह अंग्रेजों की दासता को सबसे बड़ा बंधन मानते थे। अतः देश को आजादी दिलाना उनकी प्राथमिकता थी। 1916 में होमरूल लीग की स्थापना होने के साथ ही एनी बेसेन्ट के साथ मिलकर उन्होंने गृह स्वराज्य आंदोलन अथवा होमरूल आंदोलन द्वारा स्वराज्य का संदेश पश्चिमी भारत में गुंजायमान कर दिया। इसी वर्ष (1916) लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने पूरे नौ वर्ष बाद हिस्सा लिया। तिलक के परम विरोधी वैंलेन्टिन शिरोल तक ने यह स्वीकार किया कि जब लखनऊ कांग्रेस के पंडाल में तिलक ने प्रवेश किया तब देवता के समान उनका स्वागत किया गया। इसी अवसर पर उन्होंने उद्घोषणा की, 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'। उनके सद्प्रयत्नों से कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग का अधिवेशन एक ही पंडाल में साथ-साथ हुआ। लखनऊ पैक्ट तैयार हुआ जिसमें कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने मिलकर स्वराज्य की मांग प्रस्तुत की। 1917-18 के बीच देश भर में स्वराज्य का महामंत्र गूंज उठा। 1918

में वे सर्वसम्मति से कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए, किन्तु शिरोल केस के सिलसिले में इंग्लैण्ड चले जाने की वजह से मदन मोहन मालवीय ने इस पद की शोभा बढ़ाई। 1918 के अंतिम त्रिमास में वे विलायत रहे। वैंलेन्टिन शिरोल ने अपनी पुस्तक भारतीय असंतोष (Indian Unrest) में तिलक के राजनीतिक कार्यों की आलोचना की थी। तिलक ने उस पर मुकदमा चलाया था यद्यपि यहां भी उन्हें न्याय ना मिल सका था, हां भारत की जनता के हृदय में उनका सम्मान ज्यों-का-त्यों विद्यमान था। उन्हें तिलक के आदर्श व्यक्तित्व, विशुद्ध आत्मा तथा उनकी असीम देशभक्ति के लिए किसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता न थी। उनका व्यक्तित्व तथा कृतित्व भारत में ज्यों-का-त्यों श्रद्धेय बना रहा।

विलायत प्रवास में अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए तिलक ने ब्रिटिश मजदूर दल के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित किए। आगे चलकर भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने का कार्य मजदूर दल ने ही किया। 1919 के जलियावाला बाग कांड से वह बहुत व्यथित थे अतः जलियावाला बाग तथा खिलाफत के मुद्दे पर गाँधी जी के साथ असहयोग आंदोलन चलाने की उन्होंने सहमति प्रदान की। 1 अगस्त 1920 का दिन इस आंदोलन का श्री गणेश करने के लिए निर्धारित किया गया था किंतु 31 जुलाई की रात 12 बजकर चालीस मिनट पर उन्होंने महाप्रयाण कर लिया। चेतनावस्था में उनके मुख से सुने गए अन्तिम वाक्य "यदा यदा हि धर्मस्य" था।

स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है इस घोषणा के साथ अंग्रेज़ सरकार पर किए जाने वाले प्रहार के वेग की ऊर्जा उन्होंने अपने शरीर से चुकाई थी। निरंतर श्रम तथा अतिव्यस्त दिनचर्या ने उन्हें समय पूर्व मृत्यु के निकट पहुँचा दिया था। भारत के इस महान नेता की शवयात्रा में अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था। उनकी मृत्यु से पूरा देश दुःखी था।

व्यक्तित्व तथा कृतित्व

बाल गंगाधर तिलक का व्यक्तित्व तथा कृतित्व आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है। वह एक धार्मिक तथा आत्मसम्मानि परिवार से संबंधित थे जिसकी छाप उनके व्यक्तित्व पर थी। सरकारी नौकरी ना करने का प्रण उनके आत्मसम्मान का प्रतीक था। गोपाल गणेश आगरकर तथा विष्णुशास्त्री चिपलूणकर के साथ उन्होंने कई वर्ष शिक्षा के प्रबंध एवं अध्यापन का कार्य किया। उन्होंने भारतीय जनता के बीच सादा जीवन तथा उच्च विचार का आदर्श भी प्रस्तुत किया। एक शिक्षाशास्त्री के रूप में उन्होंने पूना न्यू इंग्लिश स्कूल, डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी तथा फर्ग्युसन कालेज की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। अपने जीवनकाल में उन्होंने जिस कार्य में हाथ लगाया उस पर अपना गंभीर प्रभाव छोड़ा। उनकी मेधा बड़ी कुशाग्र थी। अंग्रेज सरकार की नीतियों में छिपी कुटिलता को भाँपने में उन्हें समय ना लगता, वे इस कुटिलता को सामान्य जनता के सामने लाने में भी न हिचकते थे। इस महान देश प्रेमी का साहस, निर्भयता तथा दयालुता हम सब के लिए अनुकरणीय है।

उन्होंने अपने जीवन के लगभग 40 वर्ष बिना किसी निजी लाभ के देश की सेवा में समर्पित किए थे। केसरी के माध्यम से उन्होंने प्राकृतिक अधिकारों, राजनीतिक स्वतंत्रता और न्याय का संदेश घर-घर पहुँचाया था। वे केवल आक्रामक राष्ट्रवादी ही नहीं थे, राजनीति के क्षेत्र में उनके द्वारा किए गए कार्यों में हमें उच्चकोटि के व्यवहारकुशल राजमर्मज्ञ के गुण भी देखने को मिलते हैं। राजनीतिक जीवन की वास्तविकता की उन्हें अच्छी परख की। वक्ता तथा लेखक के रूप में वह सीधी-सादी, स्पष्ट व तर्कपूर्ण भाषा का प्रयोग करते थे। वे लोकतंत्रवादी थे उन्होंने अपने देशवासियों से प्रेम किया और उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता का मूल्य समझाया। उनमें प्रबल नैतिक चेतना थी। यही कारण है कि उन्होंने कभी भी अनुचित उपायों को स्वीकार नहीं किया। महात्मा गांधी ने लिखा भी है – “मैंने अन्तरात्मा का मूल्य तिलक महाराज से सीखा है।” वे लिखते हैं “जहाँ तक मैं तिलक के व्यक्तित्व को समझ पाया हूँ वे भगवद्गीता के शब्दों में स्थितिप्रज्ञ और त्रिगुणातीत थे। मृत्यु को सामने खड़ा देखकर भी वे पूर्णतः अविचलित रहे।” वास्तव में वह ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने “स्वराज्य” और “कर्मयोग” दो मंत्र भारतवर्ष को दिए।

एक प्रकांड पंडित तथा मराठी साहित्य की विभूति के रूप में भी तिलक अमर हैं। उन्होंने मराठी में ओजपूर्ण तथा सशक्त गद्यशैली का निर्माण किया। उनकी कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ केसरी के अंकों में प्रकाशित हुईं। गीता

रहस्य के अतिरिक्त उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं- 1. द ओरामन, 2. द आर्कटिक होन इन दि वेदाज 3. वैदिक क्रोनोलॉजी एण्ड वेदांग ज्योतिष। भाषा की शुद्धता व सहजता के साथ उनकी रचनाओं में गणित का गहरा प्रभाव पाया जाता है।

तिलक तथा आगरकर दोनों ने मिलकर महाराष्ट्र में शिक्षा आंदोलन चलाया था। वे पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति के अंधानुयायी भी नहीं थे। उन्होंने शिक्षा को अपने राष्ट्रवाद का मूलाधार बनाया। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से देशवासियों का चरित्र-निर्माण करते हुए उनको संगठित करने का स्वप्न देखा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकमान्य तिलक एक महान देशभक्त, कुशल राजनीतिज्ञ, सफल लेखक होने के साथ-साथ आदर्श व्यक्तित्व के स्वामी थे। भारत की शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में भी वह जीवनपर्यंत संवेदनशील रहे। उनकी शैक्षिक विचारधारा के महत्त्वपूर्ण अंश हमारे लिए आज भी अपना विशेष महत्त्व रखते हैं।

तिलक के शैक्षिक विचार

बाल गंगाधर तिलक पढ़ना-लिखना सीख लेने को शिक्षा नहीं मानते थे। उनका मानना था कि "शिक्षा वही है जो हमें जीविकोपार्जन के योग्य बनाए, देश का सच्चा नागरिक बनाए, हमें हमारे पूर्वजों का ज्ञान और अनुभव दे।" तिलक व आगरकर ने मिलकर महाराष्ट्र में जिस शिक्षा आंदोलन की नींव रखी थी वह भारतीय पुनर्जागरण व राष्ट्रवाद का हिमायती था। उनके द्वारा स्थापित न्यू इंग्लिश स्कूल अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था से भिन्न था। उनका

मानना था कि राष्ट्रीय शिक्षा से ही राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण हो सकेगा। तिलक ने बताया कि शिक्षा प्राप्त करना सस्ता होना चाहिए और शिक्षक के उस आदर्शवाद से अनुप्रेरित होना चाहिए जो कि देश के प्राचीन इतिहास में विद्यमान रहा है। भारत के वैदिक और उपनिषदिक युगों के गुरु और आचार्य धन तथा भौतिक समृद्धि के लिए विख्यात नहीं थे। उनकी प्रसिद्धि, उनकी पहचान मुख्यतः उनकी विद्वता, सत्यनिष्ठा और कर्तव्यपरायणता के कारण थी। लोकमान्य तिलक चाहते थे कि भारत के पुनरुद्धार के लिए उस पुरातन आदर्श को अंगीकार किया जाए।

यहाँ हमें यह भी ध्यान देना होगा कि उन्होंने भारत के राजनीतिक विकास में अंग्रेजी शिक्षा के योगदान की अनदेखी नहीं की। होमरूल आंदोलन के दिनों में जब वे देश का दौरा कर रहे थे उस समय भी उन्होंने स्पष्ट रूप से बिना संकोच के स्वीकार किया कि अंग्रेजी शिक्षा ने देश के राजनीतिक जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। वास्तव में तिलक ने भारतीय आदर्शों तथा पाश्चात्य कार्यप्रणाली और संस्थाओं के समन्वय को महत्त्व दिया था। आगे का कार्य वह स्वयं की बोली-भाषा को आधार बनाकर करना चाहते थे। उन्होंने घोषणा की थी कि यदि आप चाहते हैं कि विद्यार्थी पढ़ाए हुए को आत्मसात कर सकें तो विदेशी भाषा के अध्ययन का बोझ कम करना होगा, नहीं तो वे जो कुछ पढ़ेंगे उसे बिना समझे रटते रहेंगे और वे अर्धशिक्षित दुर्विग्धों से अधिक कुछ न बन सकेंगे। तिलक का मानना था कि "हमें अपने स्कूल स्वयं स्थापित करने

चाहिए और अपना काम निःस्वार्थ भाव से शुरू करना चाहिए।” उन्होंने भारत में अंग्रेजी भाषा को सीखने की बाध्यता को उचित नहीं माना। वे राष्ट्रभाषा की आवश्यकता को भली-भाँति जानते थे और हिन्दी भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा बनाए जाने के समर्थक थे। हाँ, यहाँ उन्होंने क्षेत्रीय भाषाओं की महत्ता की भी अनदेखी नहीं की।

एक सामाजिक सुधारवादी होने के नाते वह शिक्षा में भी सुधारवाद के समर्थक थे और शिक्षा में आवश्यकतानुसार समय-समय पर परिवर्तन किए जाने को ज़रूरी मानते थे।⁶ उन्होंने शिक्षा को सामाजिक विकास का केंद्रबिंदु माना था। वे राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थक थे। तिलक तथा उनके साथियों ने स्वराज्य का जो मंत्र जन-जन तक पहुँचाया उसमें स्वदेशी, बहिष्कार व निष्क्रिय प्रतिरोध के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा की नीति पर भी जोर दिया गया था। उन्होंने केसरी में लिखा था कि “हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की तरह है जिसका मूल मंत्र स्वराज्य है तथा स्वदेशी और बहिष्कार उसकी शाखाएँ हैं।” धीरे-धीरे स्वदेशी को और भी व्यापक अर्थ में स्वीकार किया जाने लगा। शिक्षा, विचारों और जीवन पद्धति में भी स्वदेशी की बात की जाने लगी और एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था के लिए जनमत बन सका जो देश की अपनी एक पहचान हो। जो देश की आवश्यकता, उसके विकास के अनुरूप हो। स्वदेशी आंदोलन के दिनों में वे शिक्षा के राष्ट्रवादी पहलू पर बल देने लगे थे। बालकों के चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में वह धार्मिक शिक्षा की

महत्ता के प्रति बड़े सजग दिखाई दिए। उन्होंने कहा था कि “केवल धर्मनिरपेक्ष शिक्षा चरित्र का निर्माण करने के लिए पर्याप्त नहीं है। धार्मिक शिक्षा आवश्यक है, क्योंकि उच्च सिद्धांतों और आदर्शों का अध्ययन हमें पाप कर्मों से दूर रखता है धर्म हमें सर्वशक्तिमान परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कराता है। हमारा धर्म बतलाता है कि अपने कर्मों से मनुष्य देवता तक बन सकता है। जब हम अपने कर्मों से देवता बन सकते हैं, तो अपने कर्मों से हम यूरोपवासियों की भाँति बुद्धिमान और क्रियाशील क्यों नहीं बन सकते? कुछ लोगों का कहना है कि धर्म से झगड़े उत्पन्न होते हैं, किन्तु मैं पूछता हूँ, धर्म में झगड़ा करना कहाँ लिखा है? यदि संसार में कोई ऐसा धर्म है जो अन्य धार्मिक विश्वासों के प्रति सहिष्णुता का उपदेश देता है और साथ-ही-साथ अपने धर्म पर दृढ़ रहना सिखाता है, तो वह केवल हिन्दू धर्म है। इन स्कूलों में हिन्दुओं को हिन्दू धर्म की और मुसलमानों को इस्लाम की शिक्षा दी जाएगी और वहाँ यह भी सिखाया जाएगा कि मनुष्य को दूसरे धर्मों के भेदों को भूलना चाहिए।”⁷

इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलक के धार्मिक शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण व्यापक तथा अत्यंत व्यावहारिक हैं। वह धर्म के माध्यम से बालकों में उदारवादी दृष्टिकोण और आत्मबल का विकास करना चाहते थे। धर्म की शिक्षा बालकों के चरित्र को उत्तम बनाकर उनके भीतर जन कल्याणकारी भावनाओं का विकास कर सके, इस बात पर उन्होंने सदैव बहुत बल दिया।

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में निहित इस कमी की ओर उन्होंने हमारा ध्यान भी आकर्षित किया। राष्ट्रीय शिक्षा पर दिए गए एक भाषण में उन्होंने कहा भी था कि अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत बीस वर्ष तक लड़ने के बाद मनुष्य को धार्मिक शिक्षा के लिए कोई दूसरा द्वार खटखटाना पड़ता है। जो लोग अपने पूरे शिक्षा काल में मन में यह विचार जमा लेते हैं कि धर्म कोरा आडंबर है उनमें कर्तव्य की कोई भावना शेष नहीं रह जाती। उन्होंने यह भी बताया कि “किसी को अपने धर्म पर अभिमान कैसे हो सकता है यदि वह उससे अनभिज्ञ है?”

उन्होंने इस ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया था कि शिक्षा संस्थाओं में राजनीतिक शिक्षा भी दी जाए। उनका मानना था कि इसके अभाव में नागरिकों में अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागृति उत्पन्न नहीं होगी। तिलक ने औद्योगिक

शिक्षा को भी पर्याप्त महत्त्व दिया। उनका मानना था कि उद्योग एवं प्राविधिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में अवश्य स्थान दिया जाना चाहिए, ताकि शिक्षार्थियों में आजीविका-उपार्जन की क्षमता विकसित की जा सके।

स्पष्ट है कि बाल गंगाधर तिलक भारत में एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था के समर्थक थे जो बालक का सर्वांगीण विकास कर उसे जीवन के संघर्ष के लिए तैयार कर सके। जो छात्रों में धार्मिक भावना के समावेश से उन्हें उत्तम चरित्र का स्वामी बनाकर कर्तव्यनिष्ठ बनाए और उन्हें जनकल्याणकारी कार्यों के लिए प्रेरित करे। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में देश-प्रेम की भावना का विकास किए जाने का समर्थन किया और देश के राजनीतिक जागरण व प्रगति के लिए शैक्षिक सुविधाओं के प्रचार को आवश्यक माना।

संदर्भ

- चौबे, एस.पी., चौबे, अखिलेश, 2007, *एजुकेशनल थिंक्स*, नीलकमल पब्लिकेशन, हैदराबाद, पृ.-86
- वर्मा, वी.पी., 2002, *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक*, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृ.-228
- करन्दीकर, एस.एल., 1957, *लोकमान्य बालगंगाधर तिलक : दि हरक्यूलीज़ एण्ड प्रोमेथियस ऑफ मॉडर्न इंडिया, दि ऑथर, पूना*
- शर्मा, बी.एम., शर्मा, रामकृष्ण दत्त, शर्मा, सविता, 2005, *भारतीय राजनीतिक विचारक*, रावत पब्लिकेशन, नयी दिल्ली पृ.-71-75
- वर्मा, वी.पी., 2002, *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक*, पूर्व संदर्भित पृ.-229
- रहबर, हंसराज, 2007, *तिलक से आज तक*, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.-77
- वर्मा, वी.पी., 2002, *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक*, पूर्व संदर्भित पृ.-241

ऐसे करें आत्मनिरीक्षण

दुर्गेश नन्दिनी*

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य मानव व्यवहार में गलत आदतों के स्थान पर अच्छी आदतों का विकास करना है। जिसका मुख्य स्रोत है आत्मनिरीक्षण। यदि मनुष्य अपनी ऊर्जा का अधिकतम प्रयोग स्वयं अपने व्यवहार को परखने एवं समझने में लगाना प्रारंभ कर देता है तो वास्तव में वह अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है। किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता होती है, दृढ़संकल्प की। इसी दृढ़संकल्प को यदि मानव व्यवहार में शुभसंकल्पों के रूप में प्रयुक्त किया जाए तो व्यक्ति सकारात्मक ऊर्जा का स्रोत बनकर अपना ही नहीं अपितु देश का एवं समस्त विश्व का कल्याण करने में सक्षम हो सकता है। इन्हीं दृढ़संकल्पों के माध्यम से लेखिका ने आत्मनिरीक्षण के महत्व को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है।

आत्मनिरीक्षण का अर्थ है अपने आप का निरीक्षण करना। क्या हम सचमुच कभी अपना निरीक्षण करते हैं? क्या हम कभी समय निकालते हैं यह देखने के लिए कि हम सही हैं या गलत? बल्कि, हम गौर से सोचें तो हम पाएंगे कि हमारा पूरा दिन तो दूसरों का निरीक्षण करने में निकल जाता है। हमारा अधिकतर समय स्वयं को सही और दूसरों को गलत सिद्ध करने में निकल जाता है। यदि हम गलत भी हैं तो भी हमारी ऊर्जा इसी कार्य में लगी रहती है कि हम स्वयं को सही

और दूसरों को गलत सिद्ध कर दें और इस कारण हम अपनी ऊर्जा को रचनात्मक या उपयोगी कार्यों में पूरी तरह नहीं लगा पाते। हमारी ऊर्जा का एक बहुत बड़ा भाग केवल इस कारण नष्ट हो जाता है कि हम स्वयं का निरीक्षण करके अपनी कमियों को दूर नहीं करते।

एक बहुत बड़ा अमेरिकन बैंक है 'कमर्शियल नेशनल बैंक' वॉल स्ट्रीट अमेरिका। इस बैंक के सबसे सफल चेयरमैन हुए श्री एच.पी. हॉवेल जो कि अन्य कई कंपनियों के निदेशक भी थे। जब

उनसे पूछा गया कि उनकी सफलता का रहस्य क्या है तो उनका कहना था कि मेरे परिवारजन अच्छी तरह से जानते हैं कि मैं शनिवार शाम को कहीं नहीं जाता। वे शनिवार शाम के लिए मेरा कोई कार्यक्रम निर्धारित नहीं करते। दरअसल, वे बोले, हर शनिवार की शाम मैं अपने आत्मनिरीक्षण में व्यतीत करता हूँ। मैं अपनी डायरी में देखता हूँ कि पूरे सप्ताह मैंने क्या किया? किससे-किससे मिला व मीटिंग्स इत्यादि। फिर मैं विचार करता हूँ कि सप्ताह-भर मैंने क्या-क्या कार्य सही ढंग से किए और क्या-क्या गलतियाँ की। कभी-कभी तो चौंक जाता हूँ कि मुझे से ऐसी गलतियाँ भी हो सकती हैं। फिर मैं विचार करता हूँ कि मैंने अपनी गलतियों से क्या सीखा? इस आत्मनिरीक्षण की विधि को अपनाने से मुझे यह लाभ हुआ है कि मैं अब अपनी गलतियों को कम-से-कम दोहराने लगा हूँ।

एच.पी. हॉवेल तो अपने आत्मनिरीक्षण के लिए पूरे सप्ताह इंतजार करते थे किन्तु बेंजामिन फ्रैंक्लिन तो उनसे भी एक कदम आगे थे। वे तो रोज रात को अपना आत्मनिरीक्षण करते थे। उन्होंने अपनी तेरह गंभीर गलत आदतों की सूची बनाई थी जिनमें से मुख्य तीन थीं-समय नष्ट करना, छोटी-छोटी घटनाओं पर तनावग्रस्त हो जाना और बहस करना। बेंजामिन फ्रैंक्लिन को यह पता था कि जब तक वह अपनी इन कमियों को दूर नहीं करते वे बहुत अधिक सफल नहीं हो सकते, अतः वह अपनी एक कमी को चुन लेते थे और एक सप्ताह तक उसे दूर करने में

जुट जाते थे। अगले सप्ताह वे दूसरी कमी को पकड़ लेते थे और उसे दूर करने में जुट जाते थे। रोजाना यह देखते थे कि आज वे जीते या उनकी बुरी आदत। उन्होंने अपनी बुरी आदतों से यह लड़ाई दो वर्षों से भी अधिक समय तक जारी रखी और यही रहस्य था इस प्रतिभाशाली व्यक्ति की सफलता का।

यदि कोई अन्य व्यक्ति हमें हमारी कमी से अवगत कराता है तो हमें बर्दाश्त नहीं होता और हम अपने को सही सिद्ध करने में लग जाते हैं। अतः इससे पहले कि कोई दूसरा व्यक्ति हमारे दोषों को उछाले क्यों न हम स्वयं ही उसे ऐसा करने से पहले हरा दें। क्यों न हम अपनी गलत आदतों को स्वयं खोज कर दूर करने के प्रयास प्रारंभ कर दें। गलत आदतों के स्थान पर अच्छी आदतों का विकास अपने भीतर प्रारंभ कर दें। इसके लिए हमें यह समझना आवश्यक है कि हमारे भीतर गलत आदतें पड़ती कैसे हैं? बल्कि हमें यह समझने का प्रयास करना होगा कि हममें आदतें कैसे पड़ती हैं? जो भी हम बार-बार करते हैं, वह हमारी आदत बन जाती है। साहसपूर्ण व्यवहार बार-बार करने से हम साहसी बन जाते हैं। ईमानदारीपूर्ण एवं न्यायपूर्ण व्यवहार बार-बार करने से हम ईमानदार एवं न्यायकारी बन जाते हैं। जब एक अधिकारी पहली बार घूस लेता है तो उसके हाथ काँपते हैं, जब दूसरी बार लेता है तो पहले से कम डरता है और फिर तो घूस लेना उसकी आदत में आ जाता है।

घूस लेने के संस्कार उसके भीतर उत्पन्न हो जाते हैं। जब एक कर्मचारी ऑफिस में पहली बार लेट आता है तो डरता है, जब उससे कुछ दिन तक कुछ नहीं कहा जाता तो देर से आना उसकी आदत हो जाती है। आज हमारे और हमारे बच्चों के संस्कारों का निर्माण करने में सबसे अग्रणी है टी.वी.। 18 वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते टी.वी. पर देखे जाने वाले हिंसक दृश्यों की संख्या लगभग दो लाख हो जाती है। जब हम टी.वी. देख रहे होते हैं या रेडियो सुन रहे होते हैं तो हमारा चेतन मन कम और अर्धचेतन मन अधिक सक्रिय होता है। हमारा अर्धचेतन मन वह सब कुछ एकत्रित करता रहता है। क्योंकि हम टी.वी. से बहस नहीं कर पाते।

(दैनिक जागरण, 19 जुलाई 2009)

जब हम फिल्म देखने जाते हैं, तो हम कभी हँसते हैं और कभी रोते हैं, क्योंकि हमारा अर्धचेतन मन जो एकत्रित करता है उसके परिणाम तुरंत सामने आने प्रारंभ हो जाते हैं। हमारा अर्धचेतन मन एक बगीचे के समान है जिसे इस बात की कोई चिंता नहीं है कि हम उसमें क्या बो रहे हैं। यदि हम इसमें अच्छे बीज बोएंगे तो हमें अच्छा बगीचा मिलेगा और यदि हम चाहेंगे तो यह बगीचा झाड़-झंखाड़ आदि से भर जाएगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि बाह्य कारण हमारे अर्धचेतन मन को प्रभावित करते हैं तो क्या हम इतने गए-गुजरे हैं कि अपने अर्धचेतन मन को उपयोग में लाकर अपनी गलत या खराब आदत को दूर नहीं कर सकते। आइए, देखें

कि हम अपने अर्धचेतन मन को उपयोग में लाकर किस प्रकार अपने दोषों को दूर कर सकते हैं –

प्रथम चरण

सबसे पहले हमें आत्मनिरीक्षण करना पड़ेगा और अपनी गलत आदतों की एक सूची बनानी होगी जो कि निम्नलिखित नकारात्मक वृत्तियों पर निर्भर करती है – ईर्ष्या, द्वेष, भय, हीनता, असुरक्षा, क्रोध, निंदा, वाणी की कटुता, दबूपन, अपराध-भावना, काम को टालना, असंयम, लोभ, अहंकार, असत्य, अन्याय आदि।

द्वितीय चरण

अब हमें सूची बनानी होगी इन अच्छी आदतों की, उन सकारात्मक भावनाओं की जो हम अपने भीतर विकसित करना चाहते हैं और जो निम्नलिखित सकारात्मक वृत्तियों पर निर्भर करती हैं – प्रेम, क्षमा, आत्मविश्वास, ईश्वर में विश्वास, शांति, प्रशंसा, वाणी में मिठास, साहस, स्वयं को क्षमा करना, काम तुरंत निपटाना, संयम, त्याग, विनम्रता, सत्य और न्याय इत्यादि।

तृतीय चरण

अब हमें सूची बनानी है उन शुभसंकल्पों की जो हममें अच्छी या सकारात्मक आदतों को विकसित करवाने वाले होंगे। उदाहरणस्वरूप- यदि हम आलस्य को दूर भगाकर काम को निपटाने की प्रवृत्ति का विकास अपने भीतर करना चाहते हैं, तो हमारा शुभसंकल्प कुछ इस प्रकार का होगा-

मेरा हर कार्य ठीक समय पर या उससे पहले ही पूर्ण हो जाता है। या यदि हम महसूस करते हैं कि हम मन ही मन घुट रहे हैं तो हमारा शुभसंकल्प होगा—

अपनी भावनाओं को व्यक्त करना अच्छी बात है, मैं अपने आपको अपनी भावनाएँ व्यक्त करने की अनुमति देता हूँ।

इसी प्रकार के अन्य शुभ संकल्पों का निर्माण भी हम कर सकते हैं जो कि हमारे भीतर सकारात्मक आदतों का विकास करने वाले हों। आवश्यकता है इन शुभसंकल्पों को अपनी अर्धचेतन अवस्था में विस्थापित करने की। यदि हम ऐसा करने में सफल हो जाते हैं, अपने भीतर शुभसंकल्पों को विस्थापित कर लेते हैं तो हम अपने भीतर मनचाही सकारात्मक आदतों का विकास कर सकते हैं। अपने भीतर, अपनी अर्धचेतन अवस्था में इन शुभसंकल्पों को विस्थापित करने के लिए हम निम्नलिखित विधियों का प्रयोग कर सकते हैं—

बोलकर— रास्ते में कहीं आते-जाते, घरेलू कार्य करते-करते या रोजमर्रा के अन्य कार्य करते-करते या शीशे में अपनी आँखों में आँखें डालते हुए और शुभसंकल्पों को बोल-बोलकर दोहराएँ। टेप रिकॉर्डर में अपने शुभसंकल्पों को टेप कर लें और समय मिलने पर सुनें।

लिखकर— विज़िटिंग कार्ड्स पर इन शुभसंकल्पों को लिखकर सदा अपने साथ रखें व समय मिलने पर देखते रहें। कोई एक शुभसंकल्प चुन लें और उसे रोज 10 से 20 बार तक लिखें। ऐसा

एक सप्ताह तक करें और फिर दूसरा शुभसंकल्प चुन लें। शुभसंकल्पों को चिपकने वाले कागज पर लिखकर घर में विभिन्न स्थानों पर लगाएँ जैसे— रसोई घर में, फोन पर, दर्पण पर, मेज़ पर इत्यादि।

इनके अतिरिक्त दूसरों के साथ एवं गुनगुना कर भी हम अपने शुभसंकल्पों को अपनी अर्धचेतन अवस्था में उतार सकते हैं।

आत्मनिरीक्षण

(केवल व्यक्तिगत आयामों में सुधार के लिए ही नहीं)

इस विधि का प्रयोग हम कार्यस्थल से संबंधी अपनी आदतों और कौशलों को सुधारने में भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम शिक्षक हैं तो हम इन बातों पर चिंतन कर सकते हैं:

1. हमारा अपने शिक्षार्थियों से संबंध।
2. कक्षा के लिए उद्देश्य निर्धारित करना।
3. उद्देश्यों को पूरा करना।
4. प्रत्येक विद्यार्थी की शैक्षिक आवश्यकता पर ध्यान देना इत्यादि।

शुभ संकल्पों को अपने अर्धचेतन अवस्था में विस्थापित करने का सबसे कारगर उपाय है कि हम ध्यान की अवस्था में जाकर इन शुभ-संकल्पों को दोहराएँ और दृश्यीकरण करें कि जैसे वास्तव में हमारी नकारात्मक आदत दूर हो गई है और उसके स्थान पर सकारात्मक आदत विकसित हो गई है। और ध्यान की अवस्था में हम चलचित्र देखें, जिसमें हम अपने आपको ठीक वैसा व्यवहार करते हुए दृश्यीकृत करें जैसा कि हम वास्तव में

अपने भीतर विकसित करना चाहते हैं। स्पष्ट है कि उक्त क्रियाओं को निरन्तर करते रहने से सकारात्मक शुभ संकल्प जो कि हममें सकारात्मक गुणों का विकास करने वाले हैं हमारी अर्धचेतन

अवस्था में विस्थापित हो जाएंगे और धीरे-धीरे वह सकारात्मक आदतें हमारे व्यवहार में परिलक्षित होने लगेंगी जिन्हें हमने “आत्मनिरीक्षण” की प्रक्रिया द्वारा पहचाना है

संदर्भ

- माथुर, एस.एस., 2007, *शिक्षा मनोविज्ञान*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- आचार्य, पंडित श्री राम शर्मा, 1998, *शिक्षा एवं विद्या*, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
- बायोग्राफी ऑफ बेंजामिन फ्रैंकलिन 1999-2010*, टेम्पलॉज डायरी, दि इंडिपेंडेंस हॉल एसोसिएशन, बोस्टन, यू.एस.ए.
- मॉर्डन, स्वेट, 1998, *अपनी हिम्मत अपनी राह*, आनन्द पेपरबैक्स, दिल्ली, राइजिंग इन वर्ल्ड का हिंदी अनुवाद, अनुवादक-विश्व मित्र शर्मा
- दैनिक जागरण*, 19 जुलाई, 2009

मुक्त शिक्षा प्रणाली में गणित विषय की स्व-अनुदेशन सामग्री पर अधिगमकों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन

सत्यवीर*
अनिल कुमार**

शिक्षा परिवर्तन, प्रगति तथा विकास का प्रभावशाली माध्यम है। बहुत-से लोग जो शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक हैं लेकिन विद्यालय नियमित रूप से नहीं जा सकते, इन लोगों को बेहतर भविष्य निर्माण हेतु शिक्षा की लचीली सुविधाएँ मुक्त विद्यालयी संस्थान द्वारा प्रदान की जाती हैं। दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था में मुद्रित अध्ययन सामग्री को स्व-अनुदेशन प्रारूप में तैयार किया जाता है, इसलिए इस सामग्री को स्व-अनुदेशन सामग्री के नाम से संबोधित किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य था गणित विषय के विद्यार्थियों की मुद्रित अध्ययन सामग्री पर प्रतिक्रिया का अध्ययन करना। अधिगमकों की प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री को अध्ययन हेतु चारों अध्ययन समूह के अधिकांश विद्यार्थी अधिक सीमा तक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि मुद्रित अध्ययन सामग्री में विषय-वस्तु को सरल रूप में प्रस्तुत किया जाता है। संपूर्ण पाठ को कई भागों में विभाजित कर बीच-बीच में स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं लिखित प्रदत्त कार्य दिया जाता है इसलिए अधिगमक विषय-वस्तु को पढ़कर स्व-मूल्यांकन कर स्व-प्रेरणा पाकर आगे बढ़ते हैं। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में प्रयुक्त की जाने वाली स्व-अनुदेशन सामग्री में स्व-स्पष्टता, स्व-पर्याप्तता, स्व-निर्देशन, स्व-अभिप्रेरणा एवं स्व-आकलन जैसी सभी प्रमुख विशेषताएँ होनी चाहिए। मुद्रित अध्ययन सामग्री की पाठ्यवस्तु को तार्किक ढंग से विश्लेषित करके क्रमबद्ध रूप में सरल एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत करना चाहिए कि उसमें सततता एवं संगतता बनी रहे। स्व-अनुदेशन सामग्री को परंपरागत शिक्षा प्रणाली के कक्षा-कक्ष शिक्षक की समस्त भूमिकाएँ यथा निर्देशन, अनुदेशन, प्रोत्साहन व नियंत्रण करते हुए संपूर्ण अधिगम प्रक्रिया को स्वयं ही संचालित करने में पूर्णरूपेण समर्थ होना चाहिए।

*टी.जी.टी. (गणित), शिक्षा निदेशालय, दिल्ली

**वरिष्ठ प्रवक्ता, डायट, दिलशाद गार्डन, दिल्ली

शिक्षा परिवर्तन, प्रगति तथा विकास का प्रभावशाली माध्यम है। प्रत्येक राष्ट्र, राज्य, समाज तथा परिवार का विकास शिक्षा के स्तर पर निर्भर करता है। राष्ट्र एवं राज्य के बारे में तथा अपने पर्यावरण एवं समाज को समझने हेतु व्यक्ति को शिक्षा की सतत् आवश्यकता है। शिक्षा हमारी शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, जैविक, भौतिक क्षमताओं और शक्तियों का निरंतर सामंजस्य पूर्ण विकास करती है। हमारे व्यवहार में परिवर्तन करती है तथा हमें जीविकोपार्जन हेतु तैयार करती है।

जो अधिगमक किन्हीं कारणों से बीच में ही शिक्षा छोड़ देते हैं इन अधिगमकों को पुनः शिक्षा से जोड़ने के लिए एवं शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को पूरा करने हेतु भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने मुक्त विद्यालयी संस्थान को स्वायत्त संस्था के रूप में वर्ष 1989 में स्थापित किया है। इस विद्यालय का मिशन स्कूली शिक्षा का सार्वभौमीकरण है। सभी वर्ग के बालक-बालिकाओं और महिलाओं, ग्रामीण युवाओं, कार्यरत पुरुषों एवं महिलाओं, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति, विकलांग और अन्य प्रकार के सुविधाहीन वर्ग जो विद्यालय स्तर की शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए या जिन्होंने बीच में ही विद्यालय छोड़ दिया हो, ऐसे बहुत-से लोग जो शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक हैं लेकिन विद्यालय नियमित रूप से नहीं जा सकते, इन लोगों को बेहतर भविष्य निर्माण हेतु शिक्षा की लचीली सुविधाएँ मुक्त विद्यालयी संस्थान द्वारा प्रदान की जाती हैं।

यद्यपि दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के द्वारा अधिगमकों तक पाठ्यवस्तु के सम्प्रेषण के लिए विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाता है परंतु यह प्रणाली मुद्रित अध्ययन सामग्री को ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के मुख्य आधार के रूप में प्रयुक्त करती है। दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था में विशेष रूप से तैयार मुद्रित अध्ययन सामग्री को अधिगमकों को डाक द्वारा भेज दिया जाता है। इस मुद्रित अध्ययन सामग्री को अधिगमक अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी समय व स्थान पर स्वयं पढ़ तथा समझ सकता है। दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था में मुद्रित अध्ययन सामग्री को स्व-अनुदेशन प्रारूप में तैयार किया जाता है, इसलिए इस सामग्री को स्व-अनुदेशन सामग्री के नाम से संबोधित किया जाता है। स्व-अनुदेशन सामग्री अथवा मुद्रित अध्ययन सामग्री अधिगम के ऐसे उपकरण होते हैं जिनका स्वरूप पाठ्यपुस्तकों के अध्यायों से पर्याप्त भिन्न होता है।

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने भी दूरस्थ शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया है। दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में परंपरागत शिक्षण, मौखिक शिक्षण विधियाँ, पाठ्यक्रम, मुद्रित सामग्री, वीडियो पाठ, अध्यापक चर्चा एवं सम्पर्क कार्यक्रमों की गतिविधियों पर अनेक अध्ययन हुए हैं। साहू एवं मलिक (1994), साहू, पडिहारी एवं मुछाल (1997) ने अपने अध्ययनों में पाया कि वीडियो पाठ के पश्चात् अध्यापक चर्चा वाले समूह की उपलब्धि अधिक थी। शर्मा (1998) ने कक्षा 9 के स्तर पर विज्ञान

विषय की वीडियो आधारित विभिन्न आव्यूहों की उपलब्धि एवं प्रतिक्रिया के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया। प्रथम समूह को वीडियो कार्यक्रम के पश्चात् व्याख्यान, द्वितीय समूह को वीडियो कार्यक्रम के पश्चात् चर्चा तथा तृतीय समूह को केवल वीडियो पाठ अध्ययन कराया गया। अध्ययन का प्रारूप पश्च परीक्षण नियंत्रित समूह प्रारूप था। उपचार 40 मिनट प्रतिदिन के हिसाब से 30 दिन चला। अध्ययन में केवल वीडियो पाठ, वीडियो पाठ एवं चर्चा की अपेक्षा वीडियो पाठ के पश्चात् व्याख्यान आव्यूह को अधिक श्रेष्ठतर पाया गया।

साहू एवं खान (1999), ने अपने अध्ययन “म.प्र. में पत्राचार सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता” में पाया कि अध्यापक बाल केंद्रित शिक्षा एवं शैक्षिक प्रौद्योगिकी को अधिक वांछनीय पाते हैं। अधिकांश विद्यार्थी वर्तमान प्रदत्त कार्य प्रणाली से संतुष्ट नहीं थे। साहू एवं मुछाल (2000) द्वारा प्रथम समूह को केवल मुद्रित पाठ, द्वितीय समूह को मुद्रित पाठ + वीडियो पाठ एवं तृतीय समूह को मुद्रित पाठ + वीडियो पाठ + चर्चा उपचार के पश्चात् तीनों समूहों के विद्यार्थियों की विभिन्न आव्यूहों पर प्रतिक्रिया में पाया कि केवल मुद्रित पाठ अध्ययन एवं मुद्रित पाठ + वीडियो पाठ समूह के विद्यार्थी भी मुद्रित सामग्री के साथ वीडियो पाठ के पश्चात् चर्चा को आवश्यक मानते हुए सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

बटी एवं मेन्सेवेल (2001) ने पाया कि गणित के प्रति उच्च दृष्टिकोण रखने वाले विद्यार्थियों

की शैक्षिक उपलब्धि गणित के प्रति निम्न दृष्टिकोण रखने वाले विद्यार्थियों से अधिक थी। राइस, किंग. क्रोनिंजर, (2002) ने पाया कि अध्यापक के विभिन्न शिक्षण आव्यूहों एवं कक्षा के समय प्रबंधन के साथ ब्लॉक शैड्यूलिंग सार्थक एवं धनात्मक रूप से संबंधित है। एपलीबी, एवं जूडिथ (2003) ने पाया कि चर्चा आधारित उपागमों, विद्यार्थियों की भाषायी उपलब्धि से सार्थक रूप से संबंधित है। क्लेकर, पोलाक, मेरी (2005) ने पाया कि उच्च शैक्षिक उपलब्धि वाले विद्यालयों में अध्यापक सामान्य रूप से तीन शिक्षण आव्यूहों का प्रयोग कर रहे थे तथा निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाले विद्यालयों में अध्यापक सामान्य रूप से एक ही शिक्षण आव्यूह प्रयोग कर रहे थे। पारसंस, (2008) के आधार पर परंपरागत शिक्षण विधियों के स्थान पर कौशल एवं समझ पर आधारित शिक्षण विधियों के द्वारा शिक्षण अधिक प्रभावी होता है। क्लेरीना, (2009) ने पाया कि परीक्षा के परिणाम में लैपटॉप सहित विद्यालय की शैक्षिक उपलब्धि, लैपटॉप रहित विद्यालयों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर होता है।

अध्ययन की आवश्यकता

दूरस्थ शिक्षा में जितने भी शोध हुए हैं उनमें प्रमुख रूप से पाठ्यक्रम में सम्मिलित होने के कारण प्रदत्त कार्य संतुष्टि, दूरस्थ शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण, पाठ्यक्रम के स्वरूप, विद्यार्थियों की समस्याएँ एवं वीडियो कार्यक्रम पर हुए हैं। मुद्रित अध्ययन सामग्री शैक्षिक उपलब्धि एवं अधिगम में किस

सीमा तक सहायक है, अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया गया है। प्रस्तुत अध्ययन द्वारा इसकी उपयोगिता को खोजने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य एवं पकिल्पना

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य था “गणित विषय के अधिगमकों की मुद्रित अध्ययन सामग्री पर प्रतिक्रिया का अध्ययन करना। परिकल्पना थी विभिन्न समूहों के अधिगमकों की मुद्रित अध्ययन सामग्री पर प्रतिक्रिया में कोई सार्थक अंतर नहीं है।” अधिगमकों की अनुक्रिया मापने हेतु प्रत्येक उपागम से संबंधित कथनों पर वैकल्पिक उत्तर दिए गए थे। परिकल्पना यह थी कि वैकल्पिक स्थानों पर प्रत्येक कथन के संदर्भ हेतु अधिगमक समान रूप से प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे। परिकल्पना के परीक्षण हेतु कोई वर्ग मूल्य का उपयोग किया गया।

न्यादर्श एवं उपकरण

वर्तमान शोध में राजकीय सर्वोदय कन्या विद्यालय बी-ब्लाक नन्दनगरी दिल्ली-93 अध्ययन केंद्र

पर पंजीकृत वर्ष 2007-08 सत्र के कक्षा 10 के गणित विषय के 160 अधिगमकों को न्यादर्श के रूप में लिया गया। 40-40 अधिगमकों को चार समूहों में बाँटा गया। चारों समूहों द्वारा मुद्रित अध्ययन सामग्री पर प्रतिक्रिया हेतु डॉ. महेश कुमार मुछाल द्वारा निर्मित प्रतिक्रिया मापनी का प्रयोग किया गया।

तथ्यों का एकत्रीकरण एवं सारणीयन

प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श की प्रकृति के आधार पर मुद्रित अध्ययन सामग्री पर प्रतिक्रिया मापनी को सभी अधिगमकों को अलग-अलग भरने हेतु प्रशासित किया गया। मुद्रित अध्ययन सामग्री की उपयुक्तता पर प्राप्त तथ्यों की आवृत्ति, आवृत्ति प्रतिशत एवं कोई वर्ग मूल्य को तालिका क्रमांक 1(क) व 1(ख) में प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न कथनों के जिस विकल्प पर अधिकांश आवृत्ति व आवृत्ति प्रतिशत हो, उस कथन को मान्यता दी गई है।

तालिका क्रमांक 1 (क)

मुद्रित पाठ अध्ययन सामग्री पर समूह-1 व 2 द्वारा कथनानुसार आवृत्ति, प्रतिशत एवं कोई वर्ग मूल्य दर्शाने वाली तालिका

कथन		समूह-1				समूह-2			
		SA	A	D	कुल	SA	A	D	कुल
1. आपने मुद्रित अध्ययन सामग्री को अध्ययन हेतु किस सीमा तक पर्याप्त पाया है।	अधिगमकों की संख्या	28	9	3	40	27	8	5	40
	प्रतिशत	70	22.5	7.5	100	67.5	20	12.5	100
	कोई वर्ग मूल्य	23.41 *				19.36 *			

2.	आपने मुद्रित अध्ययन सामग्री में निम्न बिंदुओं को किस सीमा तक पर्याप्त पाया है।	अधिगमकों की संख्या	23	12	5	40	22	14	4	40
	(अ) संकल्पना समझ	प्रतिशत	57.5	30	12.5	100	55	35	10	100
		काई वर्ग मूल्य	10.96*				10.86*			
	(ब) स्वयं की प्रगति हेतु स्व-मूल्यांकन	अधिगमकों की संख्या	24	12	4	40	31	7	2	40
		प्रतिशत	60	30	10	100	77.5	17.5	5	100
		काई वर्ग मूल्य	13.66*				33.46*			
	(स) लिखित प्रदत्त कार्य	अधिगमकों की संख्या	25	11	4	40	24	12	4	40
		प्रतिशत	62.5	27.5	10	100	60	30	10	100
		काई वर्ग मूल्य	15.46*				13.66*			
	(द) परीक्षा की तैयारी हेतु	अधिगमकों की संख्या	21	12	7	40	27	11	2	40
		प्रतिशत	52.5	30	17.5	100	67.5	27.5	5	100
		काई वर्ग मूल्य	6.46*				22.06*			
3.	आपने मुद्रित अध्ययन सामग्री में निम्न बिंदुओं को किस सीमा तक उपयुक्त पाया है।	अधिगमकों की संख्या	22	15	3	40	27	10	3	40
		प्रतिशत	55	37.5	7.5	100	67.5	25	7.5	100
	(अ) विषय-वस्तु विश्लेषण	काई वर्ग मूल्य	12.36*				20.86*			
	(ब) प्रस्तावना	अधिगमकों की संख्या	24	14	2	40	26	8	6	40
		प्रतिशत	60	35	5	100	65	20	15	100
		काई वर्ग मूल्य	16.56*				16.36*			
	(स) स्व-परीक्षण प्रश्न	अधिगमकों की संख्या	23	11	6	40	23	12	5	40
		प्रतिशत	57.5	27.5	15	100	57.5	30	12.5	100
		काई वर्ग मूल्य	10.06*				10.96*			
	(द) दृश्य सामग्री (चित्र, चार्ट, ग्राफ़ एवं सारणी)	अधिगमकों की संख्या	21	10	9	40	29	6	5	40
		प्रतिशत	52.5	25	22.5	100	72.5	15	12.5	100
		काई वर्ग मूल्य	5.56*				25.36*			

(इ) स्व-परीक्षण प्रश्नों के आदर्श उत्तर	अधिगमकों की संख्या	22	12	6	40	25	12	3	40
	प्रतिशत	55	30	15	100	62.5	30	7.5	100
	काई वर्ग मूल्य	8.56*				16.66*			
(फ) स्व-अनुदेशन प्रश्नों का प्रस्तुतीकरण	अधिगमकों की संख्या	23	14	3	40	26	7	7	40
	प्रतिशत	57.5	35	7.5	100	65	17.5	17.5	100
	काई वर्ग मूल्य	13.56*				16.21*			
4. आप मुद्रित अध्ययन सामग्री के साथ वीडियो पाठ एवं चर्चा को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं।	अधिगमकों की संख्या	24	13	3	40	23	11	6	40
	प्रतिशत	60	32.5	7.5	100	57.5	27.5	15	100
	काई वर्ग मूल्य	15.01*				10.06*			
5. मुद्रित अध्ययन सामग्री को आप किस सीमा तक रुचि के अनुरूप पाते हैं।	अधिगमकों की संख्या	26	12	2	40	27	10	3	40
	प्रतिशत	65	30	5	100	67.5	25	7.5	100
	काई वर्ग मूल्य	19.96*				20.86*			

*0.01स्तर पर सार्थक **0.05 स्तर पर सार्थक SA-अधिक सीमा तक A-कम सीमा तक D-बिल्कुल नहीं

तालिका क्रमांक 1 (क)

मुद्रित अध्ययन सामग्री पर समूह-3 व 4 द्वारा कथनानुसार आवृत्ति, प्रतिशत एवं काई वर्ग मूल्य दर्शाने वाली तालिका

कथन		समूह-3				समूह-4			
		SA	A	D	कुल	SA	A	D	कुल
1. आपने मुद्रित अध्ययन सामग्री को अध्ययन हेतु किस सीमा तक पर्याप्त पाया है।	अधिगमकों की संख्या	32	6	2	40	28	9	3	40
	प्रतिशत	80	15	5	100	70	22.5	7.5	100
	काई वर्ग मूल्य	37.06*				23.41*			
2. आपने मुद्रित अध्ययन सामग्री में निम्न बिंदुओं को किस सीमा तक पर्याप्त पाया है।	अधिगमकों की संख्या	28	9	3	40	29	6	5	40
	प्रतिशत	70	22.5	7.5	100	72.5	15	12.5	100
(अ) संकल्पना समझ	काई वर्ग मूल्य	23.41*				25.36*			
	अधिगमकों की संख्या	29	7	4	40	26	10	4	40

	प्रतिशत	72.5	17.5	10	100	65	25	10	100
	काई वर्ग मूल्य	25.66*				17.56*			
(स) लिखित प्रदत्त कार्य	अधिगमकों की संख्या	29	6	5	40	32	6	2	40
	प्रतिशत	72.5	15	12.5	100	80	15	5	100
	काई वर्ग मूल्य	25.36*				37.06*			
(द) परीक्षा की तैयारी हेतु	अधिगमकों की संख्या	23	12	5	40	31	5	4	40
	प्रतिशत	57.5	30	12.5	100	77.5	12.5	10	100
	काई वर्ग मूल्य	10.96*				32.56*			
3. आपने मुद्रित अध्ययन सामग्री में निम्न बिंदुओं को किस सीमा तक उपयुक्त पाया है	अधिगमकों की संख्या	27	11	2	40	27	7	6	40
(अ) विषय-वस्तु विश्लेषण	प्रतिशत	67.5	27.5	5	100	67.5	17.5	15	100
	काई वर्ग मूल्य	22.06*				19.06*			
(ब) प्रस्तावना	अधिगमकों की संख्या	26	10	4	40	23	10	7	40
	प्रतिशत	65	25	10	100	57.5	25	17.5	100
	काई वर्ग मूल्य	17.56*				9.46*			
(स) स्व-परीक्षण प्रश्न	अधिगमकों की संख्या	28	9	3	40	21	14	5	40
	प्रतिशत	70	22.5	7.5	100	52.5	35	12.5	100
	काई वर्ग मूल्य	23.41*				8.46*			
(द) दृश्य सामग्री (चित्र, चार्ट, ग्राफ़ एवं सारणी)	अधिगमकों की संख्या	24	10	6	40	24	12	4	40
	प्रतिशत	60	25	15	100	60	30	10	100
	काई वर्ग मूल्य	11.86*				13.66*			
(इ) स्व-परीक्षण प्रश्नों के आदर्श उत्तर	अधिगमकों की संख्या	26	9	5	40	26	11	3	40
	प्रतिशत	65	22.5	12.5	100	65	27.5	7.5	100
	काई वर्ग मूल्य	16.81*				18.61*			
(फ) स्व-अनुदेशन प्रश्नों का प्रस्तुतीकरण	अधिगमकों की संख्या	25	10	5	40	29	8	3	40
	प्रतिशत	62.5	25	12.5	100	72.5	20	7.5	100
	काई वर्ग मूल्य	14.56*				26.26*			

4.	आप मुद्रित अध्ययन सामग्री के साथ वीडियो पाठ एवं चर्चा को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं।	अधिगमकों की संख्या	24	10	6	40	30	6	4	40
		प्रतिशत	60	25	15	100	75	15	10	100
		काई वर्ग मूल्य	11.86*				28.96*			
5.	मुद्रित अध्ययन सामग्री को आप किस सीमा तक रुचि के अनुरूप पाते हैं।	अधिगमकों की संख्या	30	8	2	40	29	11	2	40
		प्रतिशत	75	20	5	100	72.5	27.5	5	100
		काई वर्ग मूल्य	30.16*				24.91*			

*0.01स्तर पर सार्थक **0.05 स्तर पर सार्थक SA- अधिक सीमा तक A- कम सीमा तक D- बिल्कुल नहीं

तालिका क्रमांक 1 (क) एवं (ख) से स्पष्ट है कि “आपने मुद्रित अध्ययन सामग्री को अध्ययन हेतु किस सीमा तक पर्याप्त पाया है” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री को अध्ययन हेतु चारों अध्ययन समूह के अधिकांश अधिगमक अधिक सीमा तक उपयुक्त पाते हैं। जैसे- प्रथम समूह में 70% अधिगमक, द्वितीय समूह में 67.5% अधिगमक, तृतीय समूह में 80% अधिगमक एवं चतुर्थ समूह में 70% अधिगमक मुद्रित अध्ययन सामग्री को उपयुक्त पाते हैं क्योंकि मुद्रित अध्ययन सामग्री में विषय-वस्तु को विश्लेषित कर सरल रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में संकल्पना समझ को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में संकल्पना समझ को चारों अध्ययन समूह के अधिगमक उपयुक्त पाते हैं जैसे- प्रथम समूह में 57.5% अधिगमक, द्वितीय समूह में 55% अधिगमक, तृतीय समूह

के 70% अधिगमक एवं चतुर्थ समूह के 72.5% अधिगमक मुद्रित अध्ययन सामग्री में संकल्पना समझ को उपयुक्त पाते हैं क्योंकि संकल्पना अधिगमकों की समझ में आती है।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में स्वयं की प्रगति हेतु स्व-मूल्यांकन को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में स्वयं की प्रगति हेतु स्व-मूल्यांकन को चारों अध्ययन समूह अधिक सीमा तक उपयुक्त पाते हैं जैसे प्रथम समूह में 62.5% अधिगमक, द्वितीय समूह में 60% अधिगमक, तृतीय समूह में 72.5% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 80% अधिगमक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् प्रश्न दिए जाते हैं जिससे अधिगमक स्व-मूल्यांकन कर आगे बढ़ते हैं।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में लिखित प्रदत्त कार्य को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में लिखित

प्रदत्त कार्य को चारों अध्ययन समूह अधिक सीमा तक उपयुक्त मानते हैं, जैसे— प्रथम समूह 60% अधिगमक, द्वितीय समूह में 77% अधिगमक, तृतीय समूह में 72.5% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 65% अधिगमक सामग्री को उपयुक्त मानते हैं क्योंकि पाठ्यवस्तु में लिखित प्रदत्त कार्य के मूल्यांकन हेतु स्व मूल्यांकन उत्तर पाठ के अंत में दिए जाते हैं।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री को परीक्षा की तैयारी हेतु किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री की परीक्षा हेतु तैयारी की उपयुक्तता पर चारों अध्ययन समूह अधिक सीमा तक उपयुक्त पाते हैं जैसे प्रथम समूह में 52.5% अधिगमक, द्वितीय समूह में 67.5% अधिगमक, तृतीय समूह में 57.5% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 77.5% अधिगमक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि मुद्रित अध्ययन सामग्री का उद्देश्य परीक्षा की पूर्ण तैयारी कराना होता है।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में विषय-वस्तु विश्लेषण को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में विषय-वस्तु विश्लेषण की उपयुक्तता पर चारों समूहों के अधिकांश विद्यार्थी अधिक सीमा तक उपयुक्त पाते हैं जैसे— प्रथम समूह में 55% अधिगमक, द्वितीय समूह में 67.5% अधिगमक, तृतीय समूह में 67.5% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 67.5% अधिगमक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि मुद्रित अध्ययन सामग्री में विषय-वस्तु

का विश्लेषण उचित होता है जो अधिगमकों की समझ में आसानी से आ जाता है।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में प्रस्तावना को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में प्रस्तावना को चारों समूह के अधिगमक अधिक सीमा तक उपयुक्त पाते हैं, जैसे— प्रथम समूह में 60% अधिगमक, द्वितीय समूह में 65% अधिगमक, तृतीय समूह में 67.5% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 57.5% अधिगमक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि प्रस्तावना विषय-वस्तु के स्पष्टीकरण में सहायक होती है।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में स्व-परीक्षण प्रश्नों को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में स्व-परीक्षण प्रश्नों को चारों अध्ययन समूह के अधिगमक उपयुक्त पाते हैं, जैसे— प्रथम समूह में 57.5% अधिगमक, द्वितीय समूह में 57.5% अधिगमक, तृतीय समूह में 70% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 52.5% अधिगमक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि प्रत्येक विषय-वस्तु के पश्चात् स्व-परीक्षण प्रश्न पूछे जाते हैं।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में दृश्य सामग्री जैसे—चित्र, चार्ट, ग्राफ़ एवं सारणी को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में दृश्य सामग्री, चार्ट, ग्राफ़, चित्र एवं सारणी को चारों अध्ययन समूह के अधिगमक उपयुक्त पाते हैं, जैसे— प्रथम

समूह में 52.5% अधिगमक, द्वितीय समूह में 72.5% अधिगमक, तृतीय समूह में 60% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 60% अधिगमक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि मुद्रित अध्ययन सामग्री में विषय-वस्तु के समझाने की दृष्टि से दृश्य सामग्री को प्रस्तुत किया जाता है।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में स्व-परीक्षण प्रश्नों के आदर्श उत्तरों को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं।” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में स्व-परीक्षण प्रश्नों के आदर्श उत्तर को चारों अध्ययन समूह के अधिकांश अधिगमक उपयुक्त पाते हैं जैसे प्रथम समूह में 55% अधिगमक, द्वितीय समूह में 62.5% अधिगमक, तृतीय समूह में 65% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 65% अधिगमक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि अधिगमक स्व-परीक्षण प्रश्न हल करने के पश्चात् आदर्श उत्तर से पुष्टि कर लेते हैं।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री में स्व-अनुदेशन प्रश्नों के प्रस्तुतीकरण को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं।” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री में अनुदेशन प्रश्नों के प्रस्तुतीकरण को चारों अध्ययन समूहों के अधिगमक अधिक सीमा तक उपयुक्त पाते हैं, जैसे- प्रथम समूह में 57.5% अधिगमक, द्वितीय समूह में 65% अधिगमक, तृतीय समूह में 62.5% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 72.5% अधिगमक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि प्रश्न उस विषय-वस्तु में से ही होते हैं जिन्हें अधिगमकों ने पढ़ा है।

“आप मुद्रित अध्ययन सामग्री के साथ वीडियो पाठ एवं चर्चा को किस सीमा तक उपयुक्त पाते हैं।” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री के साथ वीडियो, चर्चा व गणित प्रयोगशाला को चारों अध्ययन समूह अधिक सीमा तक आवश्यक मानते हैं, जैसे- प्रथम समूह में 60% अधिगमक, द्वितीय समूह में 57.5% अधिगमक, तृतीय समूह में 60% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 75% अधिगमक अधिक सीमा तक आवश्यक मानते हैं क्योंकि बहुत-सी बातों का प्रस्तुतीकरण उदाहरण द्वारा हो जाता है जो मुद्रित अध्ययन सामग्री में नहीं हो पाता। बहुत सीमा तक वह वीडियो द्वारा स्पष्ट हो जाता है तथा वीडियो पाठ के पश्चात् कोई कठिनाई हो तो वह चर्चा द्वारा हल हो जाती है।

“मुद्रित अध्ययन सामग्री को आप किस सीमा तक रुचि के अनुरूप पाते हैं।” इस कथन पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मुद्रित अध्ययन सामग्री को रुचि की सीमा पर चारों अध्ययन समूहों के अधिगमक अधिक सीमा तक रुचि के अनुरूप पाते हैं, जैसे- प्रथम समूह 65% अधिगमक, द्वितीय समूह में 67.5% अधिगमक, तृतीय समूह में 75% अधिगमक तथा चतुर्थ समूह में 72.5% अधिगमक रुचि के अनुरूप पाते हैं क्योंकि मुद्रित अध्ययन सामग्री में दृश्य सामग्री को प्रयोग करके रुचिकर बनाया जाता है।

निष्कर्ष

मुद्रित अध्ययन सामग्री को अध्ययन हेतु एवं परीक्षा हेतु चारों अध्ययन समूहों के अधिकांश

अधिगमक अधिक सीमा तक उपयुक्त पाते हैं क्योंकि मुद्रित अध्ययन सामग्री में विषय-वस्तु को सरल रूप से प्रस्तुत किया जाता है। संपूर्ण पाठ को कई भागों में विभाजित कर बीच-बीच में स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं लिखित प्रदत्त कार्य दिया जाता है इसलिए अधिगमक विषय-वस्तु को पढ़कर स्व-मूल्यांकन आदर्श उत्तर द्वारा मिलान कर स्व-प्रेरणा पाकर आगे बढ़ते हैं। मुद्रित अध्ययन सामग्री में संकल्पना एवं प्रस्तावना अधिगमकों की समझ में आ जाती हैं क्योंकि विषय-वस्तु को विश्लेषित कर प्रस्तुत किया जाता है साथ ही आवश्यकतानुसार दृश्य सामग्री जैसे-चार्ट, ग्राफ, सारणी इत्यादि की प्रस्तुतीकरण होने से अधिगमक की पढ़ने में रुचि होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में प्रयुक्त की जाने

वाली स्व-अनुदेशन सामग्री में स्व-स्पष्टता, स्व-पर्याप्तता, स्व-निर्देशन, स्व-अभिप्रेरणा एवं स्व-आकलन जैसी सभी प्रमुख विशेषताएं होनी चाहिए। मुद्रित अध्ययन सामग्री की रचना इस प्रकार की जानी चाहिए कि अधिगमक बिना किसी बाहरी सहायता के पढ़ एवं समझ सके। मुद्रित अध्ययन सामग्री की पाठ्यवस्तु को तार्किक ढंग से विश्लेषित करके क्रमबद्ध रूप में सरल एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत करना चाहिए कि उसमें सततता एवं संगतता बनी रहे। स्व-अनुदेशन सामग्री को परंपरागत शिक्षा प्रणाली के कक्षाकक्ष शिक्षक की समस्त भूमिकाएँ यथा निर्देशन, अनुदेशन, प्रोत्साहन व नियंत्रण करते हुए संपूर्ण अधिगम प्रक्रिया को स्वयं ही संचालित करने में पूर्णरूपेण समर्थ होना चाहिए।

संदर्भ

- एपलबी, ऑर्थर एन, जुडीथ ए, 2003, डिस्कशन बेस्ड एप्रोचेज टू डेवलपिंग अंडरस्टैंडिंग क्लासरूम इन्स्ट्रक्शन एण्ड स्टूडेन्ट्स परफॉर्मेंस इन मिडिल एण्ड हाई स्कूल इंग्लिश क्लासरूम, *अमेरिकन एजुकेशन रिसर्च जर्नल*; बी-40, नं. 3; पृ.-685-730.
- बट्टी, जो एनी एल. मानस्वेल, 2001, टीचर इन्स्ट्रक्शन, स्टूडेन्ट्स एटीट्यूड्स एण्ड मैथेमेटिक्स परफॉर्मेंस अमंग 10, 12 वीं ग्रेड ब्लैक एण्ड स्पैनिश स्टूडेन्ट्स, *जर्नल ऑफ निग्रो एजुकेशन*, बी-70, नं. 1-2, पृ. 19-37.
- रॉय, क्लेरिआना, 2009, यूविक्विटस वायरलेस लैपटॉप इन अपर एलीमेंट्री मैथेमेटिक्स, *जर्नल ऑफ कम्प्यूटरर्स मैथेमेटिक्स एण्ड साइंस टीचिंग*, बी-28, नं.-1, पृ.-21
- क्लेकर, बेर्वली एम एण्ड पोलाक, मैरी ऐनी, 2005, कोनगुएनसी ऑफ रिसर्च बेस्ड लिट्रेसी इन्स्ट्रक्शन इन हाई एण्ड लो परफॉर्मिंग स्कूल्स, *रीडिंग इम्प्रूवमेंट*; वो.-42, नं.-3, पृ.-149
- पारसन्स, जोन, 2008, मैथेमेटिकल गेम्स, स्किल+लक=लर्निंग, *मैथेमेटिकल टीचिंग इन कार्पोरेशन माइक्रोमेथ*; एन 209, पृ.18-21.

- राइस, जैनेफिट किंग एण्ड क्रोनिंगर, रॉबर्ट जी, 2002, दि इफैक्ट ऑफ ब्लॉक शैड्यूलिंग हाई स्कूल मैथेमेटिक्स कोर्सेस ऑन स्टूडेंट्स अचीवमेंट एण्ड टीचर्स यूज ऑफ टाइम: इम्प्लीकेशन फॉर एजुकेशनल प्रोडक्टिविटी, *इकोनॉमिक्स ऑफ एजुकेशन रिव्यू*, बी-21, नं.-6, पृ.-599-607.
- साहू, पी.के., पडीहारी, जे, मुछाल, एम के, 1997, इफेक्टिवनेस ऑफ नेशनल ओपन स्कूल वीडियो इन्स्ट्रक्शनल मैटेरियल्स प्रेजेन्टेड विद एण्ड विदाउट टाकबेक मोड एक्ट सैकेण्डरी स्टेज क्वार्टर्ली जर्नल (एजुकेशन हैलर्ड)
- शर्मा, ए, 1998, *कंप्रेंशन एमंग वीडियो बेस्ड इन्स्ट्रक्शनल स्ट्रेटेजिज फॉर टीचिंग साइंस एट क्लास 9 लेवल इन टर्मस ऑफ एचीवमेंट एण्ड रियेक्शन*. एम.एड. डी.वी.वी.वी., इन्दौर
- साहू, पी. के. एवं मुछाल, एम. के., 2000, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय के दूरस्थ शिक्षण अधिगम उपगमों की उपयुक्तता का अध्ययन, *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, एन. सी. ई. आर टी., नयी दिल्ली, वर्ष 19, अंक 2, अक्टूबर, 2000।
- विवरणिका 2004, *मुक्त विद्यालयी संस्थान*, कैलाश कॉलोनी, नयी दिल्ली।
- शर्मा, आर. ए., 2006, *दूरवर्ती शिक्षा*, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- गुप्ता, एस.पी. व गुप्ता, अल्का, 2007, *मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा*, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- शर्मा व दूबे, 2008, *दूरस्थ शिक्षा*, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा।

आधुनिक संदर्भ में प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन

भवेश कुमार*

शिक्षा, जीवन यात्रा का पाथेय एवं मानवीय विकास का सशक्त संसाधन है। इस संदर्भ में भारतीय शिक्षा दर्शन का गौरवमय इतिहास रहा है। प्राचीन भारतीय शैक्षिक व्यवस्था की कतिपय विशेषताएँ-गुरुकुल की आवासीय व्यवस्था, शिक्षक का उच्चतम आदर्श एवं शिक्षा के प्रति समर्पण, शिष्य से आचार्य का पुत्रवत् संबंध, गुरु-शिष्य का भावपूर्ण आत्मीय संबंध, शिक्षार्थी का पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, अभ्युदय एवं निःश्रेयस के लिए शिक्षा, स्वानुशासन, इकहरी शिक्षा व्यवस्था (सबके लिए समान शिक्षा), निःशुल्क शिक्षा, विद्यार्थी का सतत् मूल्यांकन आदि आज भी कदाचित् शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए सर्वथा प्रासंगिक है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था की इन्हीं विशेषताओं को आधुनिक शिक्षा के संदर्भ में स्पर्श करने का प्रयास किया गया है।

शिक्षा मानव की मूलभूत आवश्यकता है। यह मानव विकास का सशक्त संसाधन है। एक आदर्श विकसित राष्ट्र का उदय वृहद् भौगोलिक क्षेत्र एवं प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता मात्र से ही नहीं, वहाँ के चरित्रवान, श्रमशील एवं प्रबुद्ध नागरिकों से होता है। जापान इसका जीता-जागता उदाहरण है। 'अशिक्षा जनतंत्र का प्रमुख अभिशाप है।' प्लेटो की यह उक्ति मात्र जनतंत्र तक सीमित नहीं, सभी शासन प्रणालियों पर प्रयुक्त होती है। शिक्षा और राष्ट्रीय विकास का परस्पर सह-संबंध

है। आज विश्व के जापान, नार्वे, स्वीडन, न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क, स्विट्जरलैण्ड, आयरलैण्ड आदि छोटे-छोटे देश जहाँ साक्षरता लगभग शत-प्रतिशत है, विकास के उच्च शिखर पर स्थित हैं। अफ्रीका एवं एशिया के अनेक राष्ट्रों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण वहाँ की साक्षरता प्रतिशत की न्यूनता है। अतः विश्व के सभी राष्ट्र शिक्षा के प्रचार-प्रसार में सतत् संलग्न हैं। भारत ने भी स्वतंत्रता के बाद इस दिशा में लंबी छलाँग लगायी है। देश के सुदूर ग्राम्यांचलों तक विद्यालयों, महाविद्यालयों का

संजाल स्थापित हुआ है। हमारा शिक्षा-प्रतिशत काफी बढ़ा है। हमारे प्रौद्योगिकीय एवं प्रबंधन संस्थानों ने अंतर्राष्ट्रीय जगत में ख्याति अर्जित की है। आज भारत के शिक्षाविद् प्रमुखतः तकनीकी विशेषज्ञ (टेक्नोक्रेट्स) विश्व में अपनी मेधा का प्रदर्शन कर रहे हैं किन्तु इस प्रगति के बाद भी अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। 6-14 आयु वर्ग के बालक-बालिकाओं के निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के संवैधानिक प्रावधान² एवं शिक्षा के मौलिक अधिकार³ के बाद भी देश के शत-प्रतिशत बच्चों का नामांकन विद्यालयों में सुनिश्चित नहीं किया जा सका है। शिक्षा आज तक देश में सर्वसुलभ नहीं हो सकी है। आज भारत में विश्व के सबसे अधिक निरक्षर रहते हैं। विश्व के कुल निरक्षरों का लगभग एक तिहाई भाग यहाँ निवास करता है। 6-14 आयु वर्ग के बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिए पूरे देश में पाँच लाख से अधिक शिक्षकों के पद रिक्त हैं।⁴ विद्यालयों में विद्यार्थियों के अनुपात में भौतिक एवं शैक्षिक संसाधन उपलब्ध नहीं हैं। उच्च शिक्षा में गुणात्मक शिक्षा को कौन कहे, देश के युवाओं के अनुपात में हम महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना नहीं कर सके हैं। ज्ञान आयोग के एक प्रतिवेदन के अनुसार युवाओं की संख्या के अनुपात में देश में 1500 विश्वविद्यालयों एवं 50,000 महाविद्यालयों की स्थापना होनी चाहिए। उच्च शिक्षा की स्थिति यह है कि भारत सरकार उच्च शिक्षण संस्थानों को शैक्षिक रूप से समृद्ध बनाने के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों को यहाँ लाने के लिए प्रावधान

बनाने में संलग्न है। जबकि सदियों पूर्व यहाँ तक्षशिला और नालंदा जैसे अंतर्राष्ट्रीय, ख्यातिलब्ध विश्वविद्यालय थे, जिनमें विश्व के अनेक देशों के विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे।

आज देश में गहरा चारित्रिक संकट है। शिक्षालयों में यह नैतिक हास शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों स्तर पर परिलक्षित हो रहा है। विद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन, अनुशासन, चरित्र, नैतिकता, श्रमशीलता, प्राचीन गुरुकुलीय गुरु-शिष्य संबंध, गुरु के प्रति सम्मान एवं समर्पण आदि वातावरण का सर्वथा अभाव है। हमारी शिक्षा विद्यार्थियों को जिज्ञासु बनाने में असफल सिद्ध हो रही है। अधिकांश विद्यार्थी समय से विद्यालय में उपस्थित नहीं होते, शिक्षा में उनकी अभिरुचि नहीं होती, कक्षाओं से पलायन करते हैं, परीक्षाओं में अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। विद्यार्थियों में शील सम्पन्नता, अनुशासन, आज्ञापालन, समाज-सेवा, लक्ष्य के प्रति समर्पण एवं प्रतिबद्धता का अभाव विद्यमान है। कदाचित् उनके समक्ष कोई उच्च आदर्श प्रतिमान (रोल मॉडल) भी नहीं है। आज शिक्षा एक व्यवसाय का रूप ग्रहण कर चुकी है। विद्यालयों में मेधावी, विद्याविनय, शिक्षण-कौशल सम्पन्न, शिक्षण व्यवसाय के प्रति समर्पित, विषय विशेषज्ञ आचार्यों का भी अभाव है, शासकीय एवं राज्य-वित्तपोषित अशासकीय विद्यालयों की नियुक्तियों में भ्रष्टाचार एवं संसाधनों के अभाव में आर्थिक कारणों से शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ती निजी भागीदारी के फलस्वरूप शिक्षा में और गुणात्मक हास आया है। शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता एवं अभिरुचि न रखने वाले

मात्र रोजगार के लिए शिक्षा में (अपेक्षाकृत कम योग्यता वाले) आए अध्यापकों के कारण भी शिक्षा में काफ़ी गिरावट आई है। देश के युवाओं की वन-निर्माण से संबंधित शिक्षा जैसे पुनीत कार्य में संलग्न कतिपय शिक्षक युग-प्रवाह में भौतिक आकर्षण से अपने मूल कर्तव्यों की उपेक्षा करते हुए व्यक्तिगत शिक्षण/कोचिंग संस्थाओं के संचालन, राजनीति या आय के अन्य स्रोतों से धनार्जन में संलग्न हैं।

शिक्षा वस्तुतः, सच्चे अर्थों में जीवन निर्माण करने वाली, मनुष्य बनाने वाली, चरित्र-गठन करने वाली एवं जीवन में मानवीय मूल्यों का विकास करने वाली होती है। स्वतंत्रता के छः दशक बाद भी हमारी शिक्षा देश के युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने एवं उनमें उच्च नैतिक मूल्यों को समाहित करने में असफल रही है। शिक्षण संस्थान विद्यार्थियों के मस्तिष्क में मात्र पुस्तकीय ज्ञान भरने तक सीमित हैं। विद्यार्थियों का ऊर्जावान बहुमूल्य जीवन सैद्धांतिक विषयों को रटने-रटाने में व्यतीत हो रहा है। विश्वविद्यालय मात्र युवाओं के मस्तिष्क में भरे हुए पुस्तकीय ज्ञान के परीक्षण के संस्थान बने हुए हैं। वे ऐसी उपाधियाँ वितरित कर रहे हैं जिनकी जीवन में कोई विशेष उपयोगिता नहीं, जिनसे डिग्रीधारी बेरोजगार युवाओं की मात्र लंबी फौज़ खड़ी हो रही है। हमारी वर्तमान मूल्यांकन विधा भी अंक अर्जन पर आधारित है। परीक्षा में मस्तिष्क में भरे हुए ज्ञान को उगल कर जो अधिक अंक अर्जित करता है वह श्रेष्ठ घोषित किया जाता है। वर्तमान परीक्षा प्रणाली में दक्षता, कौशल, मानवीय मूल्यों एवं

चारित्रिक विकास के मूल्यांकन की कोई विधा विद्यमान नहीं है। इनके अतिरिक्त गुणात्मक शिक्षा, शिक्षा के मूलभूत उद्देश्य, बहुआयामी पाठ्यक्रम, शिक्षण-पद्धति, रोजगारपरक शिक्षा, मानवीय मूल्यों के विकास हेतु शिक्षा आदि विषयों पर भी चिंतन अपेक्षित है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राचीन शिक्षा दर्शन के आलोक में उन बिन्दुओं को स्पर्श करने का प्रयास किया गया है जो आधुनिक शिक्षा के लिए मार्गदर्शी-प्रासंगिक हो सकते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य

भारतीय शिक्षा दर्शन में विद्या को अमृत एवं अविद्या को मृत्यु कहा गया है तथा शिक्षा का उद्देश्य 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् समस्त सांसारिक बन्धनों-अभावों से मुक्ति प्रदान करते हुए अमरत्व (मोक्ष-जीवन का श्रेष्ठतम विकास) सुनिश्चित करना था। प्राचीन भारत में पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति जीवन का अभीष्ट था। इस अभीष्ट में जीवन का समग्र लौकिक (अर्थ और काम) एवं पारलौकिक (धर्म और मोक्ष) उत्कर्ष समाहित था। शिक्षा जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करने का प्रमुख साधन थी। शिक्षा का उद्देश्य जीवन में अभ्युदय (पूर्ण भौतिक उत्कर्ष) एवं निःश्रेयस (आध्यात्मिक विकास) सिद्ध करना था। प्राचीन विद्या केंद्र, गुरुकुल एवं आश्रम इन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए परा (ब्रह्म या अध्यात्म विद्या) एवं अपरा विद्या (लौकिक विद्या) के माध्यम से ऐसी शिक्षा में संलग्न थे जिससे

चरित्रवान, श्रमशील, विद्याविनय सम्पन्न, तेजस्वी विद्यार्थी उद्भूत होते थे। कदाचित् शिक्षा का यही उद्देश्य भारतीय शिक्षाविदों डॉ. राधाकृष्णन की नैतिकता एवं चरित्र निर्माण करने वाली शिक्षा, महर्षि अरविन्द की आध्यात्मिक विकास की शिक्षा, स्वामी विवेकानन्द की जीवन निर्माण करने वाली, मनुष्य बनाने वाली एवं चरित्र गठन करने वाली तथा महात्मा गांधी की शरीर, मन एवं आत्मा की सर्वोत्तम विकास करने वाली शिक्षा की अवधारणा का अभिप्रेरक है। कदाचित् शिक्षा का यही उद्देश्य पाश्चात्य विचारक पेस्टालाजी की मनुष्य की अन्तःनिहित शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण प्रगतिशील विकास संबंधी शिक्षा का भी मार्गदर्शी है। स्वतंत्रता के लंबे अंतराल के बाद भी शिक्षा के इस उद्देश्य को हम प्राप्त नहीं कर सके हैं और आज भी यह हमारे लिए आदर्श बना हुआ है।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की वर्तमान संवैधानिक अवधारणा भारत में सभ्यता के प्रारंभ-वैदिक काल से ही विद्यमान थी। प्राचीन भारतीय अवधारणा में पितृऋण से उन्मुक्त होने के लिए पुत्रोत्पत्ति ही आवश्यक नहीं थी, पुत्रों का सुशिक्षित एवं ज्ञानवान होना भी अनिवार्य था।⁵ ऋषिऋण से भी मुक्ति के लिए मंत्रद्रष्टा ऋषियों के ज्ञान का प्रचार-प्रसार एवं अध्ययन-अध्यापन आवश्यक था। शिक्षा को अनिवार्य बनाने के उद्देश्य से भारतीय चिन्तकों (ऋषियों) ने मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास चार आश्रमों में विभक्त किया और आश्रमवास एवं उसके नियमों का

अनुपालन अनिवार्य बताया। ब्रह्मचर्य आश्रम विद्यार्जन, चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास का आश्रम था। इस आश्रम में अध्ययन अनिवार्य था। याज्ञवल्क्यस्मृति में स्वाध्याय का परित्याग उपपातक (अपराध) घोषित है।⁶ सबको शिक्षा प्रदान करने हेतु प्रचुर मात्रा में अध्यापक उपलब्ध हों, एतदर्थ समाज के एक वर्ग विशेष का अध्यापन कर्तव्य निर्धारित किया गया। अध्यापन प्रत्येक विद्वान ब्राह्मण का अनिवार्य कर्तव्य था। गृहस्थ के पंचयज्ञों में ब्रह्मयज्ञ महत्त्वपूर्ण यज्ञ के रूप में परिगणित है।⁷ अध्यापन ही ब्रह्मयज्ञ था।⁸ विद्वान ब्राह्मण के लिए निःशुल्क शिक्षा देना अनिवार्य किया गया। शुल्क लेकर अध्ययन उपपातक (अपराध) घोषित है।⁹ ज्ञान का विक्रय समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। ब्रह्मयज्ञ संपादन के लिए प्रत्येक ब्राह्मण के साथ कुछ शिष्यों का होना आवश्यक था। इन शिष्यों में आचार्य के पुत्र भी समाहित थे। आचार्य का गृह ही विद्यालय था। आचार्य पुत्रवत् अन्य शिष्यों के लिए भी भोजन, आवास एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करते थे। इस प्रकार के विद्यालयों का प्रचलन वैदिक काल में विशेष रूप से था।¹⁰ कालांतर में उच्च शिक्षा के उद्देश्य से गुरुकुलों एवं आश्रमों का उदय हुआ। गुरुकुल एवं आश्रम उच्च शिक्षा के केंद्र थे। प्राचीन भारत में आचार्य भारद्वाज, गौतम, परशुराम, महर्षि व्यास, कण्व, अगस्त्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, द्रोणाचार्य, संदीपनि एवं शौनक आदि ऋषियों के आश्रम उच्च शिक्षा के केंद्र के रूप में प्रख्यात थे। शिक्षा को निःशुल्क बनाने के उद्देश्य से विद्याश्रमों के संचालन के लिए राजा और प्रजा

का मुक्त हस्त से दान देने का कर्तव्य निर्धारित किया गया। जिससे आचार्य भौतिक चिंताओं से मुक्त होकर गुणात्मक शिक्षा प्रदान कर सकें। बौद्धकाल में विश्वविख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय, जिसमें दस हजार आवासीय विद्यार्थी एवं एक हजार आचार्य कार्यरत थे, दान में प्राप्त दो सौ ग्रामों के राजस्व एवं उत्पाद से संचालित था। निर्धन से निर्धन विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण कर सके इसके लिए भिक्षा ग्रहण करना ब्रह्मचारी का अनिवार्य कर्तव्य निर्धारित किया गया। समाज के सभी वर्ग की शिक्षा के लिए एक समान शिक्षा व्यवस्था थी। राजा, रंक और आचार्य के पुत्र एक ही साथ गुरुकुल में अध्ययन करते थे। निर्धन सुदामा महर्षि संदीपनि के आश्रम में श्रीकृष्ण के सहपाठी थे। राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सामान्य ब्रह्मचारियों के साथ महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में अध्ययन करते थे।

सबके लिए शिक्षा

प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था अत्यंत समृद्ध थी। शिक्षा सबके लिए विद्यमान थी। डॉ. अल्तेकर के अनुसार उपनिषद् काल में भारत में साक्षरता 80 प्रतिशत थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार उसी को था जो शिक्षित होने पर शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रस्तुत रहता था।¹¹ समावर्तन संस्कार के समय स्नातक यह व्रत लेता था कि वह समाज में शिक्षार्थियों को विद्या दान करेगा।¹² प्राथमिक शिक्षा सबको सुलभ थी। प्रथमतः प्राथमिक शिक्षा का दायित्व कुल का था। माता-पिता बालक के प्रथम शिक्षक थे। पिता ही प्रायः अक्षर ज्ञान

कराता था। पढ़ना, लिखना एवं समझना प्रारंभिक शिक्षा में समाहित था। आचार्य चाणक्य के अनुसार राजकुमारों की शिक्षा अक्षर ज्ञान एवं अंक ज्ञान से आरम्भ होता थी।¹³ माता आचार-व्यवहार की शिक्षा देती थीं। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला थी। कालांतर में योग्य माता-पिता के अभाव तथा शिक्षा में विशिष्टीकरण के फलस्वरूप प्रारंभिक शिक्षा का दायित्व पुरोहित या आचार्य की परिधि में समाविष्ट हुआ। दक्षिण भारत से प्राप्त शिलालेखों से यह उल्लेख मिलता है कि सामान्यतः सामूहिक रूप से पूरे गाँव की ओर से ही पाठशाला संचालित होती थी। पाठशाला में शिक्षक प्रायः गाँव के पुरोहित होते थे।¹⁴ बौद्ध काल में जनभाषा में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हुआ। लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था थी। यह शिक्षा प्रायः वंशगत थी। प्रत्येक वर्ण के व्यक्तियों को उसकी अभिरुचि के अनुसार कर्मकाण्ड, पौरोहित्य, अस्त्र संचालन, धनुर्विद्या, कृषि, पशु-पालन, वाणिज्य, विविध शिल्प, कला-कौशल, संगीत गायन-वादन, नृत्य, अभियंत्रण (भवन निर्माण), भवन, रक्षा तथा समाजोपयोगी विविध उपकरणों एवं यंत्रों के निर्माण की व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। उच्च शिक्षा का अवसर योग्य एवं मेधावी व्यक्तियों के लिए सुलभ था। वैदिक कर्मकाण्ड, यज्ञादि धार्मिक कृत्य एवं अध्यापन का कार्य प्राचीन भारत में एक वर्ण विशेष (ब्राह्मण) का कर्तव्य था। अतः उसके लिए वेद, वेदांग एवं धर्मशास्त्रों का अध्ययन अनिवार्य था किन्तु ब्राह्मण का यह विशेषाधिकार

जात्या नहीं उसकी धर्मज्ञता, सदाचार संपन्नता एवं वेदपारंगता के कारण था।¹⁵ ब्राह्मण को वेदाध्ययन की सुविधा ब्राह्मणवंश में उत्पन्न होने के कारण नहीं उसकी मेधा, शिक्षा की पात्रता, ज्ञान-पिपासा एवं भौतिक आकर्षणों से दूर रहते हुए बिना किसी भौतिक व्यवसाय के शिक्षा के प्रति समर्पण के कारण प्राप्त थी। मनु ने तो आचारच्युत, धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले गुणविहीन ब्राह्मण को असंभोज्य (धार्मिक कृत्यों में भोजन कराने के अयोग्य), असंयाज्य (यज्ञ-याजन के अयोग्य), असंपाठ्य (अध्यापन के अयोग्य), अविवाह्य (संभ्रान्त परिवार में विवाह के लिए अपात्र) एवं यहाँ तक कि अप्रणम्य (अभिवादन के भी योग्य नहीं)¹⁶ घोषित किया है।

वस्तुतः प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थी का चयन योग्यता एवं मानसिक क्षमता के आधार पर होता था। सभी वर्णों के लिए उच्च शिक्षा में प्रवेश का द्वार खुला हुआ था। अम्बरीष, त्रसदस्यु, अश्वमेध, विश्वामित्र आदि अनेक वैदिक ऋषि क्षत्रिय थे। ऋग्वेद का तृतीय मण्डल विश्वामित्र के कुल की कृति मानी जाती है।¹⁷ प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक आचार्य सुश्रुत विश्वामित्र के वंशज कहे जाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के लेखक महीदास शूद्रामाता के पुत्र थे।¹⁸ वाजसनेयी संहिता में वैदिक शिक्षा के अधिकारी चारों वर्ण कहे गए हैं।¹⁹ अश्वपति, जनक, प्रवाहण, जैवलि आदि अनेक उपनिषद् कालीन क्षत्रिय आचार्यों का उल्लेख मिलता है जिनके पास धर्म-दर्शन के अध्ययन के लिए ब्राह्मण/ब्रह्मचारी आते थे।²⁰ आदिकालीन धर्मशास्त्रों में रथकार

(अब्राह्मण) को उपनयन और वेदाध्ययन का अधिकार होने का उल्लेख मिलता है।²¹ वैदिक विद्या के शिखर पुरुष वादरायण वेदव्यास मछुआरे की कन्या के पुत्र कहे जाते हैं। किंवदंती के अनुसार ऋतम्भरा प्रजा संपन्न महर्षि वाल्मीकि शूद्र (जनजाति) कहे जाते हैं। इनका प्रसिद्ध विद्याश्रम था जहाँ लवकुश ने अध्ययन किया था। छांदोग्योपनिषद् के अनुसार दासी जबाला के पुत्र सत्यकाम जावाल महर्षि गौतम के शिष्य थे। मनुस्मृति और महाभारत को उद्धृत करते हुए प्रोफेसर पाण्डुरंग वामन काणे उल्लेख करते हैं कि शुभ विद्या के लिए शूद्र भी आचार्य हो सकते हैं।²² बौद्धकाल में नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रवेश विशुद्ध योग्यता के आधार पर प्रवेश परीक्षा के माध्यम से होता था। महात्मा बुद्ध के महान चिकित्सक जीवक राजगृह की सालावती नामक राज परिचारिका (दासी) के पुत्र थे। महान गणितज्ञ एवं ज्योतिर्विद ब्रह्मगुप्त वैश्य थे। चीनी यात्री फाह्यान (पाँचवी शताब्दी) एवं ह्वेनसांग तथा इत्सिंग (सातवीं शताब्दी) की शिक्षा व्यवस्था के वर्णनों में भी शिक्षा में वर्ण-भेद का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अतः स्पष्ट है कि वैदिक काल में योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा में अवसर उपलब्ध था। कालांतर में स्मृति काल में वर्ण के स्थान पर जाति व्यवस्था का उदय होने लगा। स्मृतियों में नारी एवं शूद्र के लिए वेदाध्ययन के निषेध का उल्लेख प्राप्त होता है।²³ जो सर्वथा अमानवीय कहा जा सकता है। आज देश में शिक्षित बेरोजगार युवाओं की पंक्ति निरंतर लंबी हो रही है। अतः शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाने

के लिए प्राचीन भारतीय आदर्श-एक निश्चित अवधि की शिक्षा के बाद छात्र की अभिरुचि के अनुसार सभी के लिए व्यावसायिक शिक्षा तथा योग्यता के आधार पर अध्यापन, शोध एवं उच्च तकनीकी शिक्षा हेतु प्रतिभा सम्पन्न मेधावी विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के अवसर की उपलब्धता कदाचित् आज भी समीचीन है।

शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध

शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षालय शिक्षा के प्रमुख घटक हैं। प्राचीन भारत में आचार्य का गृह ही शिक्षालय था जिसे आचार्य कुल, गुरुकुल या आश्रम कहते थे। गुरुकुल या आश्रम प्रायः अरण्यों के प्रशांत एवं सुरम्य वातावरण में, जहाँ आचार्य की गायों को चरने के लिए विस्तृत भू-भाग, यजन-पूजन, अग्निहोत्र आदि की सामग्रियों की उपलब्धता के लिए वृक्ष एवं पुष्पवाटिकाएँ, स्नान के लिए नदी या सरोवर तथा कृषि के लिए पर्याप्त भूमि एवं फलों से युक्त उद्यान विद्यमान हों, अवस्थित होते थे। उपनयन संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरुकुलों में आचार्य के परिवार के सदस्य के रूप में उनके सतत् मार्गदर्शन में अध्ययन करते थे। आचार्य शिक्षण के प्रति समर्पित थे। वे ब्राह्मणत्व-ज्ञान, शील-सदाचार, धर्मज्ञता, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह के साक्षात् मूर्ति थे। शिक्षण आचार्य का व्यवसाय नहीं व्रत और संकल्प था। अध्ययन-अध्यापन उनका अनिवार्य धर्म (कर्तव्य) निर्धारित था। वे विद्या-दान के अडिग व्रती (मिशनरी) थे। आजीवन अध्ययन (यावज्जीवमधीते विप्रः), शोध, चिन्तन-मनन एवं

तप साधना उनके जीवन का अभिन्न अंग था। समावर्तन संस्कार के समय वे स्वाध्याय एवं प्रवचन (विद्या-दान) से प्रमाद न करने का (स्वाध्याय प्रवचनाभयां न प्रमदितव्यम्) संकल्प लेते थे। इसके विपरीत आचरण पर उनके आचार्यत्व के विलुप्त होने का भय था।²⁴ गुरुकुल का अभीष्ट आचार्य एवं ब्रह्मचारी दोनों के ब्रह्मतेज एवं यश का संवर्धन था।²⁵ आचार्य अपने ज्ञान एवं शील-सदाचार का सर्वस्व शिष्य को समर्पित करते, अपने पास कुछ भी अवशेष नहीं रखते थे।²⁶ गुरु के साथ शिष्य का पुत्रवत् संबंध था। शिष्य उनके परिवार का एक अंग था। उसके आवास, भोजन, वस्त्र आदि समग्र सुविधाओं का प्रबंध आचार्य का दायित्व था।

गुरुकुल में प्रवेश के लिए पात्रता निर्धारित थी। उपनयन संस्कार के पूर्व शिष्य की कठोर परीक्षा ली जाती थी। इस परीक्षा में असफल होने पर आचार्य को यह स्वतंत्रता थी कि वह उसे गुरुकुल में प्रवेश न दें अथवा कुछ काल तक प्रतीक्षा करने को कहें।²⁷ अपात्र का गुरुकुल में प्रवेश निषेध था।²⁸ मेधावी, जिज्ञासु, आप्त, सेव्यभाव संपन्न, पवित्र आचरण वाले धर्मशील शिष्य को ही गुरुकुल में प्रवेश मिलता था।²⁹ विद्या शिष्य के लिए तप साधना थी। विद्यार्थी जीवन ब्रह्मचर्याश्रम था जिसमें शिष्य भौतिक आकर्षणों एवं ऐश्वर्यों से दूर रहते हुए ब्रह्मचर्य के लिए निर्धारित नियमों का कठोरता से पालन करते थे। शिष्य गुरुकुल में मात्र शिक्षार्थी नहीं, गुरु की सेवा के प्रति पूर्ण समर्पित थे। गुरुचर्या, अग्निहोत्र की सामग्रियों का प्रबंध, परिसर की सफ़ाई, गो-सेवा, पुष्पवाटिका

एवं गृह वाटिका में श्रम, भिक्षा ग्रहण के लिए भ्रमण आदि शिष्य की अनिवार्य दिनचर्या थी। फलतः प्राचीन भारत के विद्याश्रमों में शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य अत्यन्त आत्मीय संबंध थे। आज शिक्षण कार्य पूर्णतः व्यवसाय का रूप ग्रहण कर चुका है। इस व्यवसायीकरण का प्रभाव गुरु-शिष्य के पवित्र संबंधों पर भी पड़ा है। फलतः प्रभावी शिक्षण के लिए गुरु शिष्य का गुरुकुलीय पवित्र भाव आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है।

चरित्र एवं अनुशासन

प्राचीन भारत में विद्या निकेतन आवासीय थे जहाँ ज्ञानार्जन, चारित्रिक विकास एवं अनुशासन का नैसर्गिक वातावरण विद्यमान था। ऋषि ऋतम्भरा प्रज्ञासम्पन्न, पवित्र जीवन जीने वाले, शिक्षा के लिए समर्पित ऋषि एवं आदर्श आचार्य थे। आचार्य विद्यालय के मात्र शिक्षक ही नहीं, शिक्षार्थी के गुरु भी थे। शिष्य के समग्र व्यक्तित्व के विकास पर उनकी सतत् सतर्क दृष्टि रहती थी। विद्यार्थी प्रातःकाल से रात्रि में शयनपर्यन्त आचार्य के पर्यवेक्षण एवं निर्देशन में गुरुकुल के नियमों का पालन करते थे। शिष्य के साथ गुरु का पुत्रवत् संबंध था। चरित्र निर्माण विषयक विविध कार्यक्रम-संध्या, उपासना, अग्निहोत्र, वेदघोष, योग आसन, प्राणायाम, उपवास, व्रत, गुरुचर्या, गो-सेवा आदि गुरुकुल की दिनचर्या के अभिन्न अंग थे। गुरुकुल में विद्यार्थी शिक्षार्थी नहीं ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य के नियमों का जीवन में आचरण विद्यार्थी के लिए अनिवार्य था। ब्रह्मचर्य से विद्यार्थी में मानसिक

एकाग्रता, मन एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण, प्रबल कार्यशक्ति एवं चारित्रिक-आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती थी। शिक्षा भौतिक समृद्धि, चारित्रिक विकास एवं आध्यात्मिक उन्नयन अर्थात् अद्वैतानुभूति-सभी प्राणियों में ईश्वरीय तत्त्व के दर्शन, यह अनुभूति कि हम, तुम और सब एक ही हैं, हम सब एक ही विराट पुरुष के अंश हैं, अतः जाति, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय आदि के भेदभाव के बिना सबके प्रति करुणा, दया, प्रेम, बन्धुत्व के उदात्त मानवीय मूल्यों के सृजन के लिए दी जाती थी।

अनुशासन के लिए सामान्यतः शारीरिक दण्ड (Corporal Punishment) का निषेध था किन्तु विशेष परिस्थितियों में लघु दण्ड अनुमन्य था। निर्धारित मात्र से अधिक दण्ड देने पर शिक्षक दण्ड की सीमा में थे।³⁰ आधुनिक विद्यालयों की तरह चरित्र, नैतिकता एवं अनुशासन के लिए नैतिक शिक्षा (Moral Education) की कक्षाएँ संचालित नहीं होती थीं। गुरुकुल का समग्र वातावरण ही चरित्र एवं अनुशासन का पर्याय था। अनुशासन का आधार उपदेश या प्रवचन नहीं बल्कि शिक्षक का आचरण एवं आदर्श व्यक्तित्व था। शिष्यों के लिए शिक्षक आदर्श प्रतिमान (Role Model) थे। आज हमारे शिक्षण संस्थान अपने प्राचीन गौरव को खो रहे हैं। विद्यार्थियों के चरित्र, अनुशासन एवं नैतिक मूल्यों में सतत् क्षरण हो रहा है। विद्यार्थियों में बढ़ती अनुशासनहीनता एवं चारित्रिक संकट के वर्तमान युग में क्या ही अच्छा होता कि शिक्षक स्वयं अपने आदर्श आचरण एवं प्रभावी व्यक्तित्व से विद्यार्थियों के लिए एक उदाहरण

बनते। वस्तुतः चरित्र एवं आचरण ही अनुशासन का मूल आधार होता है। माता-पिता, अभिभावक एवं शिक्षक स्वयं आदर्श प्रस्तुत कर अनुशासन का सच्चा पाठ पढ़ा सकते हैं।³¹

गुरुकुल एवं आश्रम, भारत की समृद्ध ज्ञान परंपरा के संवाहक रहे हैं। इन्हीं विद्या निकेतनों में ऋषियों ने ज्ञान के सर्वोच्च स्रोत वेद मंत्रों का दर्शन (अन्वेषण) एवं संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, आदि ग्रंथों का प्रणयन किया। इन्हीं में श्रुति परंपरा से वेद अधीत और संरक्षित हुए तथा वेद-वेदांग, धर्मशास्त्र, पुराण, दर्शन, व्याकरण, साहित्य, गणित, ज्योतिष, विज्ञान, आयुर्वेद, धनुर्वेद एवं विविध कलाओं के विशाल साहित्य का अध्ययन-अध्यापन एवं विकास सुनिश्चित हुआ। भारतीय ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं के प्रज्ञा पुरुष महर्षि वेदव्यास (वैदिक ज्ञान के पुरोधा), गौतम, आपस्तम्ब, बौधायन, विष्णु, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति (धर्मशास्त्र एवं विधि विज्ञान), पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि (व्याकरण शास्त्र एवं योग विज्ञान), चाणक्य (राजनीति एवं कूटनीति विज्ञान), कपिल (विश्व-रचना विज्ञान),

कणाद (वैशेषिक दर्शन), धनवन्तरि, अश्वनी कुमार, चरक, सुश्रुत, अग्निवेश, भारद्वाज (आयुर्वेद एवं चिकित्सा विज्ञान), महर्षि परशुराम, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य (धनुर्वेद एवं सैन्य विज्ञान), नागार्जुन (रसायन विज्ञान), आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त (ज्योतिष एवं खगोल विज्ञान) आदि इन्हीं विद्या निकेतनों की वृहद् ज्ञान परंपरा की अमूल्य निधि हैं। प्राचीन भारतीय शैक्षिक दर्शन की कतिपय विशेषताएँ-गुरुकुल की आवासीय व्यवस्था, शिक्षक का उच्चतम आदर्श एवं शिक्षा के प्रति समर्पण, शिष्य से आचार्य का पुत्रवत् संबंध, गुरु-शिष्य का भावपूर्ण आत्मीय संबंध, शिक्षार्थी का पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, अभ्युदय एवं निःश्रेयस के लिए शिक्षा, स्वानुशासन, इकहरी शिक्षा व्यवस्था (सबके लिए समान शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा) विद्यार्थी का सतत् मूल्यांकन आदि शिक्षा के गुणात्मक विकास के शाश्वत आदर्श हैं। स्वतंत्रता के लंबे अंतराल के बाद भी हम इस आदर्श को नहीं प्राप्त कर सके हैं और आज भी कदाचित् यह आदर्श देश के लिए प्रासंगिक बना हुआ है।

संदर्भ

1. सर अरनेस्ट बारकर, 1957, ग्रीक पॉलिटिकल थ्योरी, प्लूटो एण्ड हिज प्रेडिसेसर्स, लन्दन, पृ.-149
2. संविधान की धारा 45
3. शिक्षा अधिनियम-2009
4. दैनिक जागरण, दिनांक 30-12-2010
5. तस्मात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुस्तस्मादेननुशास्ति। -वृहदारण्याकोपनिषद् 1.5.7(डॉ. अनन्तसदाशिव अल्तेकर, 1955, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, वाराणसी, पृ. 18

6. याज्ञ. 3/229-242
7. मनु. 3/71, 4/21, याज्ञ. 1/102
8. 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः' मनु. 3/70
9. याज्ञ. 3/235
10. तोमर, लज्जाराम, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, केशवकुंज, नयी दिल्ली, पृ. 107
11. ऐतरेय आरण्यक 3.8.6
12. तोमर, लज्जाराम, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृ. 65
13. अर्थशास्त्र 1.2
14. तोमर, लज्जाराम, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृ. 53
15. 'प्रतिपादित बहुश्रुत विषयं न ब्राह्मणमात्र विषयम्।' - याज्ञ. 2/4 पर मिताक्षरा व्याख्या, गौतम. 8.4-11
16. असंभोज्या ह्यसंयोज्या असंपाठ्या विवाहिनः। चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ज्ञाति संबन्धिमिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः। निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम्॥
17. मनु. अध्याय 9 श्लोक 238-239
18. अल्लेकर, डॉ. अनन्त सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ. 31
19. तोमर, लज्जाराम, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृ. 55
20. यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानिजनेभ्यः। ब्रह्म-राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वायचारणाय च॥-वाजसनेयी संहिता 26/2, लज्जाराम तोमर, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृ. 56
21. वृहदारण्यकोपनिषद्, 2.1.15, डॉ. अनन्त सदाशिव अल्लेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ. 31
22. वही, पृ. 34
23. काणे, पी. वी., 1997, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, वाल्यूम 2, पार्ट-वन, थर्ड एडिशन, भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे, पृ. 3251
24. वही, पृ. 367
25. काणे, पी. वी., वही, पृ. 329
26. "सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्।" - तैत्तिरीयोपनिषद् 1, 3
27. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.4.14.2-3
28. तोमर लज्जाराम, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, पृ.-60
29. मनुस्मृति 2.112-113
30. मनुस्मृति 2.109, 115, याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.28
31. काणे, पी. वी., 1997, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, वाल्यूम 2, पार्ट- वन, थर्ड एडिशन, पृ. 362, मनुस्मृति 8.299
32. कलाम, ए. पी. जे. अब्दुल, 2002, 'इग्नाइटेड माइण्ड्स', पैग्विन बुक्स लिमिटेड, नयी दिल्ली, पृ. 78

शिक्षा का अधिकार : एक विश्लेषण

प्रदीप कुमार सिंह *

शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू करके सरकार ने बहुत ही साहसिक और सराहनीय कार्य किया है। लेकिन इसके मार्ग में बहुत ही चुनौतियाँ हैं, जैसे- गरीबी या निर्धनता, रूढ़िवादी सामाजिक परिवेश, वित्तीय समस्या, गुणवत्ता की कमी, ड्रॉप आउट आदि। इन चुनौतियों को दूर किए बिना शिक्षा के अधिकार अधिनियम के उद्देश्यों अर्थात् देश में 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को सार्वभौमिक, अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराना कठिन होगा। तमाम प्रयासों के बाद अभी भी इस आयु वर्ग के लगभग 92 लाख बच्चे स्कूल से बाहर हैं। अतः इसकी सफलता के लिए सरकारी प्रयास के साथ-साथ सामाजिक सहभागिता तथा अभिभावकों का सहयोग भी आवश्यक है।

राज्य का यह नैतिक दायित्व होता है कि वह अपने सभी नागरिकों के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था करे। विशेष रूप से भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास की दृष्टि से यह अनिवार्य हो जाता है। इस दृष्टि से हाल ही में भारतीय संसद द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार (6-14 वर्ष के बच्चों के लिए) बनाया जाना सराहनीय कदम है।

बसु (1992) के अनुसार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में उल्लेख किया गया है कि

राज्य 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों को संविधान लागू होने के 10 वर्षों के भीतर निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराएगा। लेकिन शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने एवं 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को कानूनी रूप देने में भारत सरकार को 60 वर्ष लग गए तो इसे व्यवहार रूप में परिणत करने में कितना समय लगेगा यह चिन्ता का विषय है। प्रस्तुत लेख में इन्हीं बिंदुओं पर विचार किया गया है।

*15-एम.एम.आई.जी., ए.डी.ए. कॉलोनी, म्योरबाद, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश-211002

शिक्षा के अधिकार का तात्पर्य

यहाँ शिक्षा के अधिकार का तात्पर्य देश के सभी (6-14 वर्ष तक के) बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के कानूनी अधिकार से है।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए किए गए प्रयास एवं वर्तमान स्थिति

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में समय-समय पर सरकार द्वारा प्रयास किए गए हैं। शिक्षा का अधिकार विधेयक संसद द्वारा 2009 में पारित किया गया जो 1 अप्रैल 2010 से लागू हो गया है। उच्चतम न्यायालय ने 1993 में उन्नीकृष्णन मामले में फैसला देते हुए 0-14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए मुफ्त अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया। लेकिन उस समय शिक्षा को मौलिक अधिकार नहीं बनाया जा सका। इसके अलावा वर्तमान कानून के अनुसार 0-6 वर्ष तक के बच्चों को इस कानून के दायरे में न लाया जाना इस आयु वर्ग के साथ धोखा है।

(सिंह 2004)

सन् 2000-01 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए सर्वशिक्षा अभियान नामक योजना चलायी गई। इसका प्रमुख उद्देश्य 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चों को कम-से-कम 8 वर्ष तक की स्कूली शिक्षा उपलब्ध कराना है। इस अभियान का लक्ष्य 2003 तक सभी बच्चों को स्कूल में नामांकन

कराना, वर्ष 2007 तक सभी बच्चों द्वारा पाँच वर्ष की शिक्षा सम्पन्न करना तथा 2010 तक सभी बच्चों द्वारा 8 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा सम्पन्न करना है। सन् 2010 बीत चुका है लेकिन सर्वशिक्षा अभियान लक्ष्य पूर्ति होने तक जारी रहेगा। कागजी खाना-पूर्ति के बाद भी 6-14 वर्ष तक के लगभग 22 करोड़ बच्चों में से लगभग 92 लाख बच्चे अभी भी स्कूल से बाहर हैं।

नवम्बर 2002 में 93वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 21 में 6-14 वर्ष तक के बच्चों के लिए शिक्षा को मूलाधिकार के रूप में प्रतिस्थापित किया गया। इसके अलावा अनुच्छेद 51(1) में एक और मौलिक कर्तव्य जोड़कर माता-पिता के लिए अपने बच्चों को शिक्षा देना कर्तव्य बताया गया। इसलिए भारतीय संसद द्वारा शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 पारित किया गया है। इसके तहत निजी स्कूलों को भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले 25 प्रतिशत बच्चों को अनिवार्य रूप से दाखिला देना होगा। इसका संपूर्ण खर्च सरकार वहन करेगी।

6-14 वर्ष तक के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कुछ योजनाएँ पहले से देश एवं प्रदेश स्तर पर चल रही हैं जैसे-राष्ट्रीय साक्षरता मिशन (1988), बिहार शिक्षा परियोजना (1991-92, बिहार), लोक जुम्बिश (1992, राजस्थान), स्कूल चलो अभियान (उ.प्र.), जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (1994 से देश के 242 जिलों में), मीड डे मील योजना (1995 से देश के 14 राज्यों में), तथा राष्ट्रीय प्राथमिक शिक्षा मिशन (1995) आदि। इन तमाम

प्रयासों एवं कार्यक्रमों को चलाए जाने के बावजूद अभी भी पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी है। देश के 6-14 आयु वर्ग के 22 करोड़ बच्चों में से अभी भी 92 लाख बच्चे स्कूल से बाहर हैं।

(दैनिक जागरण, अप्रैल 2010)

लेकिन सबसे सुखद पक्ष यह है कि धीरे-धीरे ही सही हम लक्ष्य के करीब पहुँच रहे हैं। जहाँ मार्च 2003 में 2.49 करोड़ बच्चे स्कूल से बाहर थे, वहीं मार्च 2005 में यह संख्या घटकर 1.35 करोड़ रह गई जो कि अब लगभग 92 लाख रह गई है। यदि ये आंकड़े सत्य हों तो भी कुछ अन्य पहलू शंका उत्पन्न करते हैं। लगभग 20 प्रतिशत बच्चे कक्षा एक से दो के बीच पढ़ाई छोड़ देते हैं। ड्रॉप आउट का यह औसत अन्य दूसरी कक्षाओं की तुलना में सबसे ज्यादा है।

(दैनिक जागरण, मार्च 2006)

इसका वास्तविक कारण कक्षा एक में बच्चों का फर्जी नामांकन दिखाया जाना है। जो भी हो यह देश की असफलता ही कही जाएगी कि हम अपने शत-प्रतिशत बच्चों को 62-63 वर्षों से आज़ाद होने के बावजूद नामांकन नहीं करा सके और शिक्षा को सभी बच्चों (6-14 वर्ष) का मौलिक अधिकार बनाने में इतना समय लग गया।

इसके अलावा प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता का अभाव चिंता का विषय है। वर्तमान उपराष्ट्रपति माननीय हामिद अंसारी के अनुसार प्रारंभिक शिक्षा में पढ़ाई की विषयवस्तु, उसकी गुणवत्ता और उसके नतीजे अब भी अहम मसले हैं। बड़ा सवाल यह है कि स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षक

कैसे हैं? क्या वे प्रशिक्षित हैं? क्या और कैसे पढ़ाया जा रहा है? शिक्षकों व विद्यार्थियों का अनुपात क्या है?

(दैनिक जागरण, नवम्बर 2010)

शिक्षा का अधिकार कानून

शिक्षा को सभी बच्चों का मौलिक अधिकार बनाने वाला कानून 'शिक्षा अधिकार अधिनियम-2009' 1 अप्रैल 2010 से लागू हो गया है। इस कानून के तहत 6-14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का हक मिल गया है। यह कानून इस कार्य को सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय और राज्य सरकारों पर बाध्यकारी होगा। इस कानून के तहत बच्चों को स्कूल फ़ीस, स्कूल ड्रेस, किताबों, यातायात एवं मीड डे मील आदि का खर्च नहीं देना पड़ेगा। बच्चों को अगली कक्षा में जाने से नहीं रोका जायेगा। कोई स्कूल बच्चे का प्रवेश लेने से मना नहीं कर सकता। प्रत्येक 60 बच्चों पर कम से कम दो अध्यापक होंगे। इसके तहत निजी स्कूलों को गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले 25 प्रतिशत बच्चों को दाखिला देना अनिवार्य होगा। इसका खर्च सरकार वहन करेगी।

शिक्षा अधिकार अधिनियम-2009 के अनुसार कक्षा 1 से कक्षा 5 तक न्यूनतम 200 व कक्षा 6-8 तक न्यूनतम 220 कार्यदिवस अनिवार्य हैं, फिलहाल 180 से अधिक कार्यदिवस नहीं हो पाते हैं। पहली से पाँचवी तक के बच्चों को एक सत्र में 800 घंटे व 6-8 तक के बच्चों को न्यूनतम 1000 घंटे अध्यापन अनिवार्य होगा। वर्तमान में इसकी सीमा 700 से 850 घंटे तक

ही है। इस प्रकार शिक्षकों को सप्ताह में न्यूनतम 48 घंटे कार्य करना होगा जबकि वर्तमान में उन्हें सप्ताह में 36 घंटे कार्य करना होता है। इस कानून में 1 से 5 तक के बच्चों को एक कि.मी. के दायरे में तथा कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों के लिए तीन कि.मी. के दायरे में स्कूल उपलब्ध कराने की व्यवस्था दी गई है। शिक्षा का अधिकार कानून को लागू करने में जो खर्च आएगा उसे केंद्र व राज्य सरकारें 55:45 के अनुपात में वहन करेंगी। इसमें केंद्र सरकार ने अपना योगदान 55 से बढ़ाकर 65 प्रतिशत कर दिया है।

शिक्षा के अधिकार कानून की चुनौतियाँ

शिक्षा के अधिकार कानून की राह चुनौतियों से परिपूर्ण है। इसे व्यावहारिक रूप से लागू करने में कठिनाई है लेकिन यदि सरकार की नीयत साफ़ है तो असंभव नहीं है। सरकार का यह कदम सराहनीय है क्योंकि आज़ादी के 62 सालों बाद भी सरकार कम-से-कम इस तरफ़ कदम उठाने का साहस तो कर सकी। शिक्षा के अधिकार कानून को सफल बनाने के लिए इसके मार्ग की कुछ निम्नलिखित चुनौतियों से निपटना होगा—

1. शिक्षा नीति में बदलाव या परिवर्तन

हमारी मौजूदा शिक्षा नीति शिक्षा के अधिकार कानून में अवरोध पैदा करेगी। वर्तमान शिक्षा पद्धति में कई तरह के विद्यालय समानांतर रूप से चल रहे हैं जैसे परिषदीय विद्यालय, अर्द्धसरकारी प्राथमिक विद्यालय, नगर निगम के विद्यालय एवं निजी प्राथमिक विद्यालय। लेकिन जो भारतीय समाज है वह सामाजिक दृष्टि से स्तरीकृत है।

दूसरी तरफ हम शैक्षिक समानता भी लाना चाहते हैं परंतु हमारी शिक्षा पद्धति अमीरों के लिए अलग विद्यालय एवं गरीबों के लिए अलग विद्यालय की पद्धति पर चल रही है। ऐसे में यहाँ दोहरा मापदंड दिखाई देता है। अमीरों के बच्चे प्रतिष्ठित निजी विद्यालयों में दाखिला पा लेते हैं जबकि गरीबों के बच्चों को वहाँ ठहरने नहीं दिया जाता है क्योंकि उनके माता-पिता आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से कमजोर होते हैं। हालांकि इस कानून में निजी विद्यालयों को आर्थिक रूप से कमजोर 25 प्रतिशत बच्चों का दाखिला करने के लिए व्यवस्था दी गई है लेकिन इसके खिलाफ़ निजी शिक्षण संस्थाओं के संगठन ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की है और उनकी याचिका स्वीकार भी कर ली गई है।

(दैनिक जागरण, अप्रैल 2010)

यदि उपर्युक्त 25 प्रतिशत बच्चों को निजी विद्यालयों में दाखिला मिल भी जाता है तो भी उन्हें सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े होने के कारण विद्यालयी वातावरण में सामंजस्य बैठाने में कठिनाई होगी और ड्रॉप-आउट की समस्याएँ बढ़ेंगी। प्राथमिक शिक्षा में ही अनुसूचित जाति के 52 प्रतिशत से अधिक और अनुसूचित जनजाति के 63 प्रतिशत से अधिक बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं।

(दैनिक जागरण, नवम्बर 2010)

उपर्युक्त समस्या का एक ही समाधान हो सकता है कि सरकार शिक्षा नीति में बदलाव करते हुए कोठारी आयोग (1964-1966) के सुझावों के अनुसार समान विद्यालयी पद्धति को

अपनाए। इससे प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में अप्रत्याशित लाभ होने की संभावना बढ़ जायेगी।

2. गरीबी या निर्धनता

शिक्षा के अधिकार कानून की दूसरी चुनौती गरीबी या निर्धनता है। जब तक निर्धनता दूर नहीं होगी तब तक इस कानून की सफलता संदेहास्पद रहेगी। अभी भी लगभग 30 प्रतिशत भारतीय गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करते हैं और इसका भी निर्धारण बहुत ही उदारवादी मापदंडों पर किया गया है। इन निर्धनों या गरीबों को अगले वक्त की रोटी की चिंता होती है, ये बच्चों को स्कूल भेजना पसंद नहीं करते विशेषकर लड़कियों को। इनके बच्चे अपने छोटे भाई-बहनों को संभालते हैं अथवा अपने माता-पिता के काम में हाथ बटाते हैं। ऐसे अधिकांश अभिभावकों की शिक्षा के प्रति अभिरुचि ऋणात्मक होती है। वे शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का कारक नहीं मानते। वे शिक्षा की मँहगाई देखकर पहले ही हताश हो जाते हैं। हालांकि मिड डे मील योजना से दाखिले एवं ड्रॉप-आउट में लाभ मिला है। इसके अलावा निःशुल्क ड्रेस, किताबों एवं वज्जीफे से भी नामांकन में बढ़ोतरी हुई है। लेकिन ये स्थाई लाभ प्रदर्शित नहीं करते। दोपहर के भोजन से एक टाइम खाने की व्यवस्था हो जाती है लेकिन दूसरे टाइम की चिंता बनी रहती है।

उपर्युक्त चुनौती से निपटने के लिए गरीबी का उन्मूलन करना होगा। तब शत-प्रतिशत नामांकन एवं ठहराव का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा और बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्राप्त हो पायेगा।

3. सामाजिक परिवेश

भारतीय समाज मूलतः बंद, रूढ़िवादी एवं परंपरावादी समाज रहा है। समाज जाति, धर्म एवं समुदायों में बँटा है, साक्षरता दर कम है, बहुसंख्यक लोग रूढ़ियों एवं परम्पराओं से बंधे हुए हैं। ऐसे में विद्यालयों का पहले से स्तरीकृत होना आग में घी का काम करता है। बहुत से परिवार ऐसे हैं जो लड़कियों को स्कूल भेजने में भेदभाव करते हैं। इसका सर्वप्रमुख कारण अज्ञानता है। ये रूढ़िवादी व परंपरावादी तत्व शिक्षा के अधिकार कानून के लिए चुनौतीपूर्ण हैं। डॉ. सिंह (2003) के अनुसार 'आज की तारीख में भारत में दो तिहाई निरक्षर लड़कियाँ हैं। इनमें भी अनुसूचित जाति, जनजाति और मुस्लिम समुदाय में लड़कियों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है।'

अतः शिक्षा के अधिकार को सफल बनाने के लिए जनसामान्य को विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्गों एवं मुस्लिम समुदाय के लोगों को बालिकाओं को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तथा अज्ञानता एवं रूढ़िवादिता को दूर करने के लिए विशेष प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए।

4. वित्तीय समस्या

शिक्षा के कानून को लागू करने के लिए वित्तीय संसाधनों को उपलब्ध कराना भी बहुत बड़ी चुनौती है। कोठारी आयोग (1964-1966) ने अपने रिपोर्ट में देश के सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने के लिए सिफ़ारिश की थी। इसके 44 वर्षों बाद भी हम सकल

घरेलू उत्पाद का लगभग 3 प्रतिशत ही शिक्षा पर खर्च कर पाए हैं। ऐसी स्थिति में भारत सरकार को इसके लिए आवश्यक वित्तीय जरूरतों को पूरा करने वाले वित्तीय स्रोतों को पहले से चिह्नित कर लिया जाना चाहिए था। शिक्षा का अधिकार कानून के अंतर्गत केंद्र और राज्यों के बीच 55:45 के अनुपात में वित्तीय भार वहन करने का प्रस्ताव है लेकिन बिहार, उ.प्र., मध्य प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों की तरफ से सीमित संसाधनों का हवाला देते हुए सौ फीसदी केंद्रीय मदद की माँग की गई है।

(दैनिक जागरण, अप्रैल 2010)

हालांकि इसे बढ़ाकर 65:35 के अनुपात में कर दिया गया है। उपर्युक्त चुनौती से निपटने के लिए भारत सरकार को नये वित्तीय स्रोतों को तलाशना होगा और नया फार्मूला निकालना होगा।

5. फर्जी आंकड़े

शिक्षा का अधिकार कानून को सफल बनाने के लिए फर्जी आंकड़ों से सावधान रहना होगा। मीड डे मील योजना का खर्च एवं वजीफ़ा की रकम हड़पने के लिए फर्जी नामांकन दिखाया जाता है। सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत 2003 तक सार्वभौम नामांकन का लक्ष्य रखा गया था। इस दबाव के कारण बहुत बड़ी संख्या में फर्जी नामांकन कक्षा एक में दिखाया गया। इन्हीं कारणों से 2006 में कक्षा एक से दो के बीच ड्रॉप आउट 20 प्रतिशत था।

(दैनिक जागरण, मार्च 2006)

अतः गलतफहमी से बचने के लिए यह आवश्यक है कि आंकड़ों की विश्वनीयता की जाँच के बिना उन्हें सत्य न माना जाए।

6. गुणवत्ता की कमी

सरकार जिन सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के बलबूते शिक्षा के अधिकार कानून को लागू करना चाहती है उनमें गुणात्मकता की कमी है, आवश्यक उपकरणों का अभाव है एवं ये आकर्षक नहीं हैं। यही कारण है कि हाल के वर्षों में निजी प्राथमिक विद्यालयों की संख्या एवं प्रभाव में वृद्धि हुई है। इन निजी प्राथमिक विद्यालयों ने शैक्षिक असमानता को भरपूर बढ़ावा दिया है। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात बहुत ज्यादा है। कहीं एक ही अध्यापक है, कहीं एक शिक्षा मित्र के सहारे विद्यालय चल रहा है, कहीं कक्षा एक से पांच तक की पढ़ाई एक ही साथ एक ही अध्यापक द्वारा चलाई जा रही है तथा इण्टरमीडिएट उत्तीर्ण शिक्षामित्रों (उ.प्र.) से शिक्षण कार्य कराया जा रहा है। ऐसे में एम.एल.एल. (MLL) की बात सोचनी भी बेमानी है। विद्यालयों में शौचालयों का अभाव है, कमरों में श्यामपट्ट की हालत खस्ता है।

अतः गुणात्मकता की कमी एवं सुविधाओं का अभाव शिक्षा के अधिकार कानून में अवरोध पैदा करेगा क्योंकि इससे ड्रॉप-आउट की समस्या बढ़ेगी। अतः प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि एवं विद्यालयीय सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित कराई जानी चाहिए।

7. ड्रॉप आउट (बीच में पढ़ाई छोड़ना)

सरकार खुश है कि 6 से 14 वर्ष तक के लगभग 97 प्रतिशत बच्चे पढ़ाई करने लगे हैं। लेकिन एक सच्चाई यह भी है कि प्रारंभिक शिक्षा में लगभग 43 प्रतिशत बच्चे बीच में ही

पढ़ाई छोड़ देते हैं। उ.प्र., बिहार और राजस्थान जैसे बड़े राज्यों में तो स्थिति यह है कि अनुसूचित जाति के 50 प्रतिशत से अधिक बच्चे प्राइमरी के ऊपर नहीं पढ़ पाते।

(दैनिक जागरण, नवम्बर 2010)

यह समस्या शिक्षा के अधिकार कानून के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। यदि 97 प्रतिशत स्कूल जाने वाले बच्चों में से 43 प्रतिशत बीच में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों को घटा दिया जाए तो स्थिति कितनी दयनीय है इसका अंदाजा लगाया जा सकता है।

अतः इस कानून की सफलता के लिए ड्रॉप आउट के कारकों (निर्धनता, सामाजिक भेदभाव,

जेंडर आधारित असमानता, विद्यालयी कठोरताओं आदि) को दूर करना होगा।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः शिक्षा का अधिकार कानून देर से ही सही सराहनीय कदम है। लेकिन इसकी सफलता सरकारी प्रयास के साथ-ही-साथ निजी सेक्टर के सहयोग एवं सामाजिक सहभागिता पर निर्भर करेगी। अतः हमारा नैतिक दायित्व है कि हम इस पुनीत कार्य में इकाई के रूप में सहयोग करते हुए सामूहिकता की ओर बढ़ें और प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहयोग करें। तभी देश को 2020 तक विकसित देशों की श्रेणी में लाने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा।

संदर्भ

- बसु, डी.डी., 1992, *भारत की सांविधानिक विधि*, प्रेंटिस हाल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली।
 दैनिक जागरण, 2006, कक्षा एक के बाद 20 प्रतिशत बच्चे क्यों छोड़ देते पढ़ाई, 30 मर्च, इलाहाबाद।
 दैनिक जागरण, 2010, आज श्रीगणेश, 1 अप्रैल, इलाहाबाद।
 दैनिक जागरण, 2010, शिक्षा का अधिकार कानून के खिलाफ दो और याचिकाएँ मंजूर, 13 अप्रैल, इलाहाबाद।
 शिक्षा आयोग प्रतिवेदन, 1966, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार (शिक्षा मंत्रालय), नयी दिल्ली।
 दैनिक जागरण, 2010, राज्यों के तेवर से दबाव में केंद्र, 7 अप्रैल, इलाहाबाद।
 सिंह, पी.के., 2004, *प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण, भारतीय आधुनिक शिक्षा*, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, अक्टूबर, पृ. 29-30
 दैनिक जागरण, 2010, उपराष्ट्रपति ने उठाए शिक्षा की बदहाली पर सवाल, 12 नवंबर, इलाहाबाद।

मानवीय मूल्यों से समन्वित अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता

आशा शर्मा*

‘सा विद्या या विमुक्तये’ शिक्षा वही है जो मुक्ति प्रदान करे। इस तरह शिक्षक मुक्ति मार्ग का पथ-प्रदर्शक होता है। शिक्षक देश के भावी कर्णधारों अर्थात् युग निर्माता की भूमिका अदा करता है। बीज जितना पुष्ट होगा पौधा भी उतना ही पुष्पित व पल्लवित होगा। विद्यार्थियों में ज्ञान के बीज का अंकुरण शिक्षक ही करता है चाहे वह माता की भूमिका में हो या शिक्षण संस्थानों में कार्यरत अध्यापकों के रूप में हो। शिक्षा के क्षेत्र में उभरते नए आयामों और मानवीय मूल्यों की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए आज शिक्षकों के प्रशिक्षण में गुणात्मक उन्नयन की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है ताकि शिक्षक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अंतर्निहित मूल्यों की महत्ता को आत्मसात् करते हुए व्यावसायिक सोच के संकुचित दायरे से बाहर निकलकर देश के एक जिम्मेदार नागरिक की भूमिका का निर्वहन कर सकें।

सूचना एवं प्रौद्योगिकी के भौतिकतावादी युग में द्रुतगति से होने वाले आधुनिक औद्योगिक विकास, विभिन्न संचार माध्यमों के बढ़ते आकर्षण एवं प्रभाव तथा जनसंख्या विस्फोट एवं नगरीकरण के कारण न केवल मानव की जीवन शैली प्रभावित हुई है बल्कि मानव मूल्यों के संकट की स्थिति भी चुनौती के रूप में दस्तक दे रही है। सामाजिक

जीवन में समरसता के स्थान पर विघटन की स्थिति जन्म ले रही है जिसके कारण निर्धनों व निर्बलों का शोषण वर्चस्व वाले लोगों के द्वारा निरंतर बढ़ता जा रहा है। बढ़ती स्वार्थपरता के कारण व्यक्ति अवसरवादी, आत्मकेन्द्रित, चाटुकार तथा कर्तव्य बोध से विमुख होकर मानवीयता से दूर होता नज़र आ रहा है। इसका प्रमुख कारण

*आचार्य आश्रम परिसर, पोस्ट-नयागाँव, चित्रकूट, जिला-सतना, मध्य प्रदेश-485331

है- उसमें मूल्य-चेतना का अभाव। यह स्थिति आज जीवन के विविध आयामों के रूप में चहुँओर व्याप्त है। भारतीय चिंतकों एवं शिक्षाविदों द्वारा 'व्यक्तित्व विकास के महत्वपूर्ण आयाम' के रूप में स्थापित 'शिक्षा' भी आज इसके प्रभाव से नहीं बच पाई है। भारतीय संस्कृति के संवाहक एवं राष्ट्रनिर्माता के रूप में प्रतिष्ठित शिक्षक की संकल्पना के समक्ष आज मूल्यों के संकट की स्थिति अति विचित्र और सोचनीय रूप में दिखाई देती है। अपने ज्ञान के प्रकाश से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली शिक्षकों की प्रतिबद्धता अब स्थानांतरित होकर मध्याह्न भोजन की व्यवस्था और उसके वितरण तथा सरकारी प्रक्रियाओं की कागजी आपूर्ति तक सिमट कर रह गई है। अब बालकेंद्रित शिक्षा का उद्देश्य उनके सामने गौण है। शासन द्वारा आवंटित किए गए कार्यों की कागजी प्रक्रिया को पूर्ण करना उनका प्राथमिक उद्देश्य बन गया है क्योंकि वही उनके व्यावसायिक उन्नयन का मापदंड है। शिक्षण में 'नवाचार', 'गुणात्मकता' और 'मूल्य शिक्षा' जैसे शब्द सिर्फ शैक्षिक सरकारी योजनाओं और पुस्तकों में ही दिखाई देते हैं।

उपयुक्त शैक्षिक प्रबंधन के अभाव और शिक्षकों की शिक्षणोत्तर कार्यों में बढ़ती संलग्नता के कारण न केवल शिक्षण-अधिगम का गुणात्मक स्तर प्रभावित हुआ है बल्कि शिक्षा का मूल उद्देश्य- 'बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना' केवल सपना बनकर रह गया है। इसके साथ ही शिक्षकों की शिक्षकीय अभिवृत्ति और मूल्यों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। आज

उनमें सृजनात्मक चिंतन की कमी तो होती जा रही है, साथ-ही-साथ शिक्षक बनने का आत्मसम्मान भी घट रहा है। शिक्षकों से बात करने पर अक्सर यही सुनने को मिलता है कि- 'नौकरी करना है ताकि हर महीने वेतन मिलता जाए।' इसी सीमित सोच के साथ अधिकांश लोग शिक्षक बन रहे हैं। सामान्यतः देखा जाए तो शिक्षा के हर स्तर पर अधिकांश रूप में शिक्षकों की यही धारणा देखने को मिलती है। अपने दायित्व बोध के स्थान पर वह नौकरी की सुरक्षा और प्रतिमाह मिलने वाले वेतन के प्रति ज्यादा सजग दिखाई देते हैं। प्रतिमाह मिलने वाले वेतन के अतिरिक्त वह अपने शिक्षकीय कौशलों के अनुप्रयोग और वाक्पटुता से कितना अधिक धनोपार्जन कर सकते हैं, इस पर उनका सतत चिंतन चलता है।

शिक्षकों के द्वारा दिए जाने वाले हर विषय का ट्यूशन और कोचिंग संस्थानों की सतत अभिवृद्धि इस बात का प्रमाण है कि भौतिकताग्रस्त बाजारू संस्कृति के प्रभाव ने शिक्षकों के अंदर भी धन कमाने की पिपासा को जन्म दिया है। स्वार्थग्रस्त शिक्षकों पर टिप्पणी करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है कि- "आज के शिक्षक दुकानदार हैं, विद्यादान उनका व्यवसाय हो गया है। इसलिए वे खरीदार की खोज में फिरते रहते हैं। व्यवसायियों से लोग चीजें खरीद सकते हैं, पर उनके यहाँ बिक्री की चीजों की सूची में स्नेह, श्रद्धा, निष्ठा आदि हार्दिक गुण भी रहेंगे ऐसी आशा कोई नहीं कर सकता। इस आशा के अनुसार ही शिक्षक लोग वेतन लेते हैं और विद्या-वस्तु बेचते हैं-

यहीं पर विद्यार्थियों के साथ उनका सारा संपर्क समाप्त हो जाता है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में अनेक शिक्षक जो लेन-देन के संबंध से ऊपर उठ पाते हैं, वे केवल अपनी निजी विशेषता के फलस्वरूप।”

गुरुदेव के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि आज शिक्षा में जो मूल्यों के संकट की स्थिति दिखाई दे रही है उसके तमाम कारणों में से एक प्रमुख कारण यह भी है कि समाज का पथप्रदर्शक गुरु अपने कर्तव्य और सामाजिक दायित्व से भटक गया है। अब सिर्फ नौकरी के लिए लालायित पेशेवर शिक्षक शेष रह गए हैं।

शिक्षकों का निर्माण करने वाली शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ भी आज अपने मूल उद्देश्यों से भटक गई हैं। अधिकांशतः स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना के उद्देश्य के पीछे वहाँ के संचालकों की अधिक-से-अधिक धन कमाने की व्यावसायिक दृष्टि दिखाई देती है। शिक्षकों के गुणवत्तायुक्त कार्यक्रम की योजना सिर्फ कागजों में ही परिलक्षित होती है। भावी शिक्षकों में समय के प्रति प्रतिबद्धता, अध्यापन के प्रति अभिरुचि और निष्ठा, कर्तव्यबोध, नैतिक आचार-विचार, श्रमशीलता, ईमानदारी, संवेदनशीलता, चारित्रिक व्यवहार और श्रेष्ठ चिंतन जैसे मूल्यों के विकास के प्रति ये संस्थाएँ न तो सजग हैं और न ही संकल्पित दिखाई देती हैं। प्रवेशार्थियों से एक मोटी रकम लेकर उन्हें डिग्री प्रदान करना ही इनका उद्देश्य बन चुका है। परिणामतः शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में स्वयं ही नैतिक मूल्यों की कमी है। स्वयमेव उनसे अच्छे

शिक्षक निर्माता की उम्मीद कैसे की जा सकती है? अतः यह स्थिति आज संपूर्ण शिक्षा तंत्र के लिए स्वयं ही एक प्रश्नचिह्न बन कर रह गई है।

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में मान्यता प्रदान करने वाली राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् को भी इस दिशा में पुनर्विचार और चिंतन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षाविदों, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों/संस्थाओं से जुड़े शिक्षक-प्रशिक्षकों (Teacher Educators तथा Lac) प्रशासकों को भी इस दिशा में सकारात्मक चिंतन के साथ सार्थक प्रयास करने होंगे तभी अध्यापक शिक्षा के समक्ष उत्पन्न मूल्यों के संकट की स्थिति को दूर किया जा सकता है।

आज के शिक्षक व विद्यार्थी भारतीय संस्कृति (सदाचार एवं नैतिक मूल्य) को आत्मसात् करने के बजाए भौतिकता के आकर्षण के पीछे भागते दिखाई देते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रारंभ से बालकों में अच्छी आदतों, संस्कारों एवं मानवीय मूल्यों को समावेशित करने का प्रयास किया जाए। शायद इसी आवश्यकता को महसूस करते हुए महान शैक्षिक विचारक जे. कृष्णामूर्ति एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आधारशिला रखने को कृतसंकल्पित हुए जो विद्यार्थी को वास्तविकता का बोध कराते हुए प्रेम, करुणा, प्रज्ञा, संवेदनशीलता व अंतःज्ञान आदि गुणों से युक्त बनाए। मानवीय मूल्यों से समन्वित शिक्षा की परिकल्पना के द्वारा वह 'बालकों का व्यक्तित्व निर्माण' करना चाहते थे। 'बालकों के व्यक्तित्व निर्माण' में

उन्होंने शिक्षक की भूमिका को महत्वपूर्ण रूप में स्वीकार किया इसलिए उनके अनुसार 'शिक्षण' एक महानतम पेशा है। शिक्षक का मूल दायित्व है कि वह ऐसे विद्यार्थी मन को जन्म दे जिसके भीतर कोई भय और द्वंद्व न हो। विद्यालय का वातावरण प्रेम व सहानुभूति पर आधारित हो। भयमुक्त विद्यालयी परिवेश के माध्यम से शिक्षक विद्यार्थियों में मूल्यों का निर्माण करें। लेकिन एक शिक्षक अपने विद्यार्थियों में तभी मानवीय मूल्यों का विकास कर सकता है जब उसके जीवन का आचार-विचार भी मानवीय मूल्यों से आच्छादित हो। इसलिए यदि हम विद्यालयी परिवेश में मूल्योन्मुख शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास करने की बात करते हैं तो सर्वप्रथम शिक्षकों को मानवीय मूल्यों का बोध कराते हुए, उनमें मूल्य-चेतना का विकास करना होगा। जब शिक्षकों में मूल्य प्रतिमान समाज के लिए उच्च कोटि के होंगे, तो विद्यार्थियों में भी, जो भविष्य के निर्माता हैं, संस्कारित मूल्य प्रतिमान की भावनाएँ विकसित होंगी। महर्षि अरविन्द ने भी कहा है कि- 'अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींच कर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं।'

महर्षि अरविन्द का उक्त कथन न केवल उल्लेखनीय है बल्कि स्मरणीय भी है। इस दृष्टि से नैतिक मूल्यों से ओत-प्रोत श्रेष्ठ एवं सृजनशील शिक्षकों के निर्माण में 'अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम' की अहम भूमिका है। अतः अध्यापक शिक्षा का संबंध शिक्षकों के केवल संज्ञानात्मक विकास

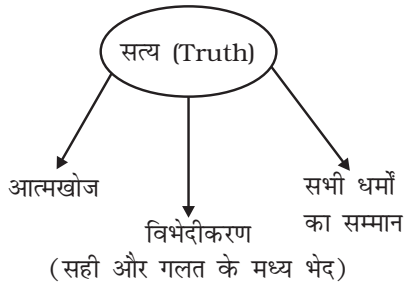
(ज्ञान, कौशल और योग्यता) से ही नहीं है बल्कि यह जीवन के उस भावात्मक पक्ष से भी संबंधित है जो शिक्षक को 'शिक्षक' के रूप में उसके अस्तित्व का बोध कराती है। शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर मानवीय मूल्यों पर आधारित अध्यापक शिक्षा की परिकल्पना व्यापक रूप में करनी होगी ताकि उसे विद्यालय और समाज से जोड़कर प्रभावी, प्रासंगिक एवं मूल्यपरक बनाया जा सके। इसलिए विद्यालय और समाज में इसकी प्रासंगिकता और उपादेयता को सार्थकता प्रदान करने की दृष्टि से 'अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम' एक दिशा चिंतन पर आधारित न होकर विविधापूर्ण सृजनात्मक चिंतन पर आधारित होना चाहिए।

अध्यापक शिक्षा में मानवीय मूल्य

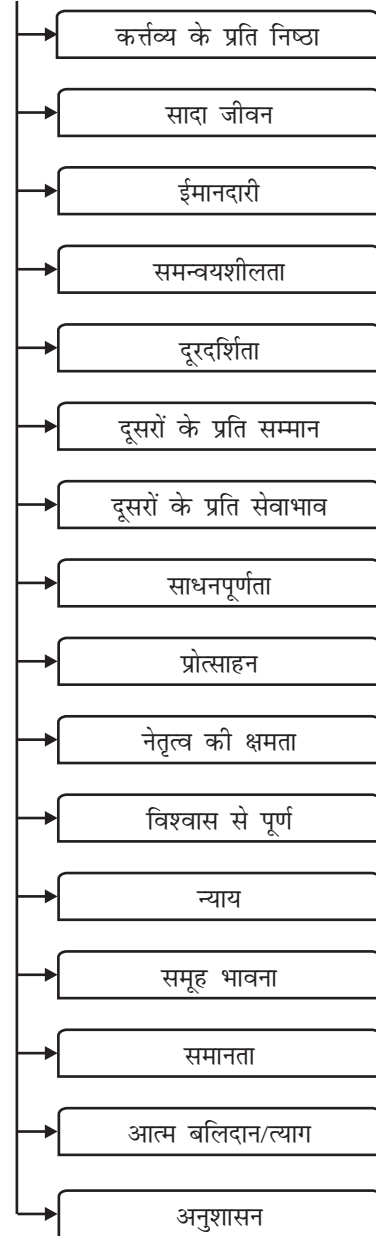
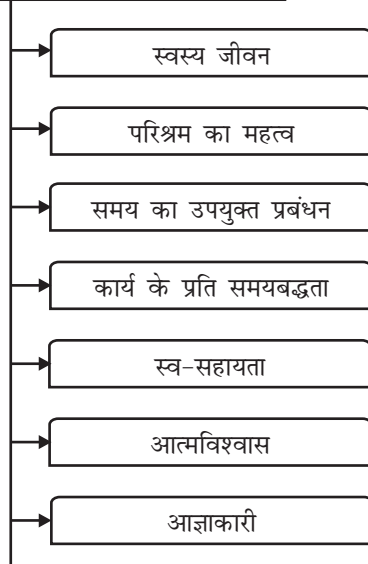
शिक्षकीय ज्ञान और सम्प्रेषण कौशल के साथ-साथ आज भावी शिक्षकों को आंतरिक रूप से सशक्त बनाने की आवश्यकता है ताकि वे चारित्रिक व्यवहार की दृष्टि से सबल बन सकें। इसके साथ ही उनमें सृजनात्मक और श्रेष्ठ चिंतन की क्षमता का विकास हो सके। यह कार्य अध्यापक शिक्षा के माध्यम से उनमें मानवीय मूल्यों का विकास करके किया जा सकता है। अतः शिक्षकों में आज जिन मूल्यों के विकास की मूल रूप से आवश्यकता है, वे हैं- सत्य, सही आचरण, शान्ति, प्रेम और अहिंसा। भारत देश की आजादी के समय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा दूसरे राष्ट्रीय नेताओं ने भी इन्हीं मानवीय मूल्यों के विकास पर

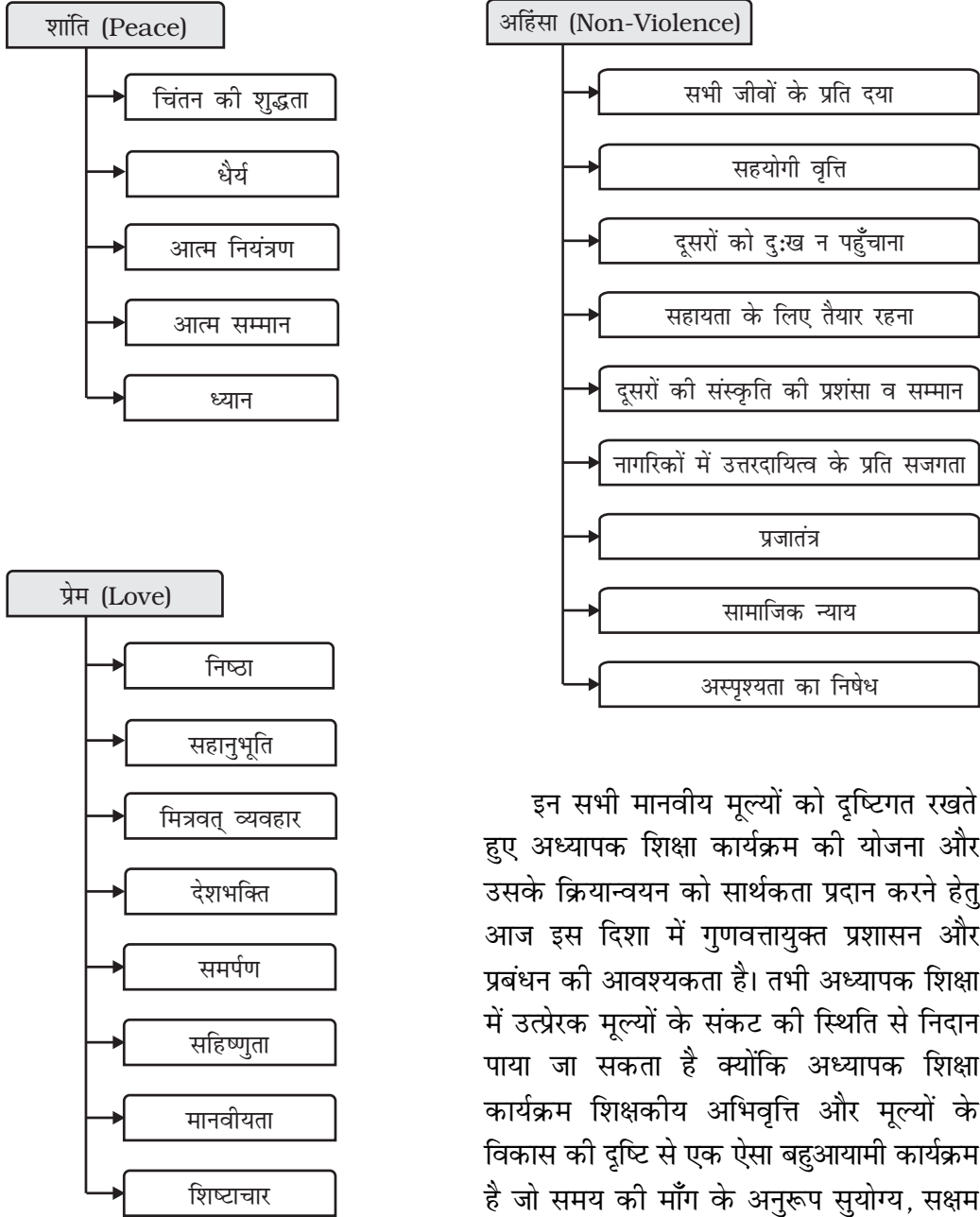
ज्यादा जोर दिया था। इन मानवीय मूल्यों का वर्गीकृत स्वरूप मॉडल के रूप में (पठानिया और पठानिया, 2006, पृ. 7) प्रस्तुत किया गया है, जिनका विकास आज शिक्षकों में किया जाना आवश्यक है-

मानवीय मूल्य और उनका वर्गीकरण



सही आचरण (Righteous Conduct)





इन सभी मानवीय मूल्यों को दृष्टिगत रखते हुए अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की योजना और उसके क्रियान्वयन को सार्थकता प्रदान करने हेतु आज इस दिशा में गुणवत्तायुक्त प्रशासन और प्रबंधन की आवश्यकता है। तभी अध्यापक शिक्षा में उत्प्रेरक मूल्यों के संकट की स्थिति से निदान पाया जा सकता है क्योंकि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम शिक्षकीय अभिवृत्ति और मूल्यों के विकास की दृष्टि से एक ऐसा बहुआयामी कार्यक्रम है जो समय की माँग के अनुरूप सुयोग्य, सक्षम एवं सकारात्मक चिंतन से युक्त संवेदनशील शिक्षकों का निर्माण करता है।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम और मानवीय मूल्यों का विकास

शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है जब अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन्हीं लोगों को प्रवेश दिया जाए जो एक अच्छे संकल्प के साथ स्वयं इस क्षेत्र में आने की इच्छा रखते हैं अथवा जिनमें शिक्षकीय अभिक्षमता और अभिरुचि दोनों हैं। इस क्षेत्र में आने वाले युवाओं को पाठ्यक्रम में प्रवेश देने के पूर्व इनका मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जाना आवश्यक है ताकि सुयोग्य लोगों को शिक्षक बनने के लिए अभिप्रेरित कर पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया जा सके। इस प्रकार के लोगों को जब शिक्षक बनने का अवसर प्राप्त होगा तो उनकी अभिवृत्ति और चिंतन सकारात्मक होगा, इसके साथ ही वे व्यावसायिक कौशल और दक्षता में भी निपुण होंगे। तदोपरान्त अब यहाँ पर विचारणीय प्रश्न यह है कि कौन-से ऐसे कार्यक्रम अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम के अंतर्गत समाविष्ट किए जाएँ जो प्रशिक्षणार्थियों में विभिन्न शिक्षण कौशलों और व्यावसायिक दक्षताओं को विकसित करने के साथ-साथ उनमें मानवीय मूल्यों का विकास करने में भी सहायक बन सकें। अतः ज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ भावी शिक्षकों का भावात्मक विकास भी हो सके, इसके लिए अध्यापक शिक्षा को मूल्यपरक बनाने हेतु **निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत हैं—**

- सैद्धांतिक शिक्षण एवं अभ्यास शिक्षण से पूर्व छात्राध्यापकों को जीवन मूल्यों एवं शिक्षकीय

मूल्यों से संबंधित मार्गदर्शिका प्रदान करना जिनके अनुरूप कार्यस्थल में उनसे आचरण की अपेक्षा की जाती है।

- शिक्षक-प्रशिक्षकों (Teacher Educators) का व्यक्तित्व मानवीय मूल्यों से समन्वित होना चाहिए क्योंकि तभी वह छात्राध्यापकों के लिए अनुकरणीय बन सकेगा।
- प्रतिदिन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत प्रार्थना सभा के आयोजन के साथ करनी चाहिए जो सभी धर्मों की समानताओं और निज आस्था पर आधारित हो।
- राष्ट्रीय पर्वों, त्योहारों, उत्सवों तथा महापुरुषों की जयंतियों का आयोजन करना तथा उनमें निहित सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और जीवन-मूल्यों के महत्त्व पर चर्चा करना।
- छात्राध्यापकों को सैद्धान्तिक शिक्षण विषयों का अध्ययन भारतीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में कराना (जैसे— भारतीय शिक्षा दर्शन एवं समाजशास्त्र, भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान, जनसंख्या शिक्षा एवं पर्यावरणीय शिक्षा आदि) ताकि वे उसके महत्त्व और प्रासंगिकता को समझ सकें और उनमें उसके अनुप्रयोग करने की क्षमता का विकास हो सके।
- सैद्धांतिक शिक्षण विषयों और अभ्यास शिक्षण के मध्य एक दृढ़ संबंध स्थापित करते हुए अभ्यास शिक्षण कार्यक्रम की योजना बनाना और उसका संचालन करना ताकि छात्राध्यापक समर्पित भाव से समयबद्ध होकर निर्धारित समय पर विषयवस्तु पर आधारित विभिन्न

- शिक्षण विधियों, कौशलों और उनमें निहित मूल्यों को मनोवैज्ञानिक ढंग से समझ सकें।
- छात्राध्यापकों की संस्थागत प्रबंधन में सक्रिय सहभागिता उनमें उपयुक्त प्रबंधन के कौशलों का विकास करती है। अतः एक सफल शिक्षक बनने के लिए उसको प्रबंधन के कौशलों का भी ज्ञान होना आवश्यक है।
 - मूल्यों पर आधारित व्याख्यान, दृश्य-श्रुत्य सामग्री का प्रयोग, यथासमय निर्देशन एवं परामर्श, पाठ्यक्रम से सम्बद्ध विषयों पर सेमिनार तथा विभिन्न पाठ्यसहगामी क्रियाओं के आयोजन के माध्यम से छात्राध्यापकों को मानवीय मूल्यों का बोध कराना ताकि उनमें मूल्य-चेतना का विकास हो सके।
 - सामाजिक सेवा कार्यक्रम, स्काउटिंग, राष्ट्रीय सेवा योजना तथा ग्रामीण प्रसार कार्यक्रमों का आयोजन ताकि छात्राध्यापकों में सामाजिक दायित्व बोध का विकास हो सके।
 - भाषा, सामाजिक विज्ञान एवं विज्ञान के क्लबों का संगठन तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु प्राकृतिक अध्ययन एवं भ्रमण कार्यक्रम को प्रोत्साहन देना।
 - महान शिक्षाशास्त्रियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन तथा उन पर परिचर्चा। इसके साथ ही नैतिक एवं धार्मिक ग्रंथों के स्वाध्याय हेतु छात्राध्यापकों को प्रेरित करना।
 - वर्तमान परिदृश्य में मूल्यों के संकट की स्थिति और मूल्य शिक्षा के विभिन्न आयामों पर केंद्रित प्रदर्शनी का आयोजन।

- समय-समय पर संतों, महापुरुषों और श्रेष्ठ शिक्षकों का सम्मान तथा उनकी व्याख्यान माला का आयोजन।
- वर्ष में कम-से-कम एक बार मूल्यों पर आधारित कार्यशाला, संगोष्ठी तथा सम्मेलन का आयोजन।
- वर्ष के अंत में संपूर्ण अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का परीक्षण और मूल्यांकन। तदोपरांत उसमें संशोधन और परिमार्जन करना।

अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम के अंतर्गत उपर्युक्त कार्यक्रमों को समाविष्ट कर उनके उपयुक्त प्रबंधन और संचालन पर भी विचार किया जाना आवश्यक है, क्योंकि जब तक प्रत्येक गतिविधि को संपादित करने के लिए पर्याप्त समय नहीं होगा तब तक प्रशिक्षण में उसकी सार्थकता सिद्ध नहीं हो सकेगी। इसलिए अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की रूपरेखा सुनियोजित ढंग से निर्धारित करके उनके संचालन एवं क्रियान्वयन में शिक्षक प्रशिक्षकों में समय प्रबंधन की ओर विशेष रूप से ध्यान देना होगा ताकि प्रत्येक गतिविधि का लाभ भावी शिक्षकों को प्रदान किया जा सके।

निष्कर्ष

बदलते सामाजिक परिवेश के अनुरूप आज शिक्षकों का कार्यक्षेत्र और उनकी जवाबदेही चुनौतीपूर्ण बन चुकी है। शिक्षा के क्षेत्र में उभरते नए आयामों और मानवीय मूल्यों की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए आज शिक्षकों के प्रशिक्षण में गुणात्मक उन्नयन की आवश्यकता को महसूस किया जा

रहा है ताकि शिक्षक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अंतर्निहित मूल्यों की महत्ता को आत्मसात् करते हुए अपने कार्यक्षेत्र के साथ न्याय कर सकें। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की भूमिका इस दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षण में नवाचार, मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग, आधुनिक सूचना एवं तकनीकी शिक्षण के उपागमों का ज्ञान, विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक गतिविधियों के माध्यम से मानवीय मूल्यों का बोध और उनका विकास शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के द्वारा भावी शिक्षकों में किया जाना आवश्यक है। यह कार्य तभी संभव है जब शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को चलाने वाले प्रबंधनकर्ता, प्रशासक और वहाँ पर कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षक व्यावसायिक सोच के संकुचित दायरे से बाहर निकलकर अपनी भूमिका का निर्वहन भारत के एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में ईमानदारी व निष्ठा के साथ करेंगे।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् को उन्हीं संस्थानों को मान्यता देने के लिए संकल्पित होना पड़ेगा जो वास्तविक रूप में मानक मापदंडों को पूरा करते हुए नैतिक मूल्यों के साथ उसका संचालन और पाठ्यक्रम में निर्धारित समस्त कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर रही है। इसके लिए विषय विशेषज्ञों के द्वारा समय-समय पर अचानक इन शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों का निरीक्षण

किया जाना आवश्यक है, ताकि वास्तविक स्थिति का सही रूप में पता चल सके और इनके गुणात्मक उन्नयन हेतु सार्थक प्रयास किया जा सके।

हमारे देश की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ/महाविद्यालय शिक्षा में मानवीय मूल्यों के संवाहक बन सकें, इसके लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् को राष्ट्रीय हितों को दृष्टिगत रखते हुए इस दिशा में आध्यात्मिक सोच और परिष्कृत चिंतन के साथ सार्थक पहल करते हुए उन गतिविधियों पर नियंत्रण पाना होगा जिनके कारण अध्यापक शिक्षा संबंधी कई ऐसे अनसुलझे मुद्दे जो सवाल बनकर आज न्यायालय तक पहुँच गए हैं, उनकी पुनरावृत्ति न हो।

अतः अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम आज एक राष्ट्रीय चिंतन का विषय बन चुका है, जिसे राष्ट्रीय स्तर पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना भी आवश्यक है। इसके साथ ही इस दिशा में व्यापक दृष्टि के साथ गहन शोध की भी आवश्यकता है ताकि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की यथार्थ स्थिति सुनिश्चित हो सके। यदि इसके नियंत्रण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर ठोस रणनीतियाँ बनाकर सार्थक कदम नहीं उठाए गए तो अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक उन्नयन और मानवीय मूल्यों के विकास की चर्चा एवं उसकी परिकल्पना सिर्फ एक सपना बनकर रह जाएगी।

संदर्भ

- भारद्वाज, ऋतु, 2006, अध्यापक के पर्याय, *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, वर्ष-25, संयुक्तांक 1-2, जुलाई-अक्टूबर 2006, पृ.सं. 36-48
- दास, ममता, 2004, वैल्यू एजुकेशन, *यूनिवर्सिटी न्यूज*, वॉल्यूम-42, नम्बर-16, अप्रैल 19-25, पृ.सं. 12-5
- गुप्त, नत्थूलाल, 2002, *मूल्यपरक शिक्षा और समाज*, नमन प्रकाशन, नयी दिल्ली
- जैन, धर्मपाल, 2004, मूल्य आधारित शिक्षा, *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, वर्ष-23, अंक-1, जुलाई 2004, पृ.सं. 20-23
- जैन, नीलांजना, 2005, मूल्यों के प्रबलीकरण की योजना, *रचना*, वर्ष-9, अंक 52-53, जनवरी-अप्रैल 2005, पृ.सं. 63-64
- कौशिक, विवेक, 2006, स्व वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों की समस्याएँ: एक अध्ययन, *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, वर्ष-24, अंक-4, अप्रैल 2006, पृ.सं. 46-67
- मिश्र, भारतेन्दु, 2004, 21वीं शताब्दी में अध्यापक शिक्षा की चुनौतियाँ, *प्राइमरी शिक्षक*, वर्ष-23, अंक-2, अक्टूबर 2004, पृ.सं. 56-58
- पाण्डेय, रामशकल, 2000, *मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य*, आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ
- पठानिया, कुलवन्त और पठानिया, अनीता, 2006, फॉस्टरिंग वैल्यूज इन एजुकेशन : सम सजेशंस, *यूनिवर्सिटी न्यूज*, वॉल्यूम-44, नम्बर-16, जून, 26 जुलाई-02, पृ.सं. 5-9
- प्रिया, नीरज, 2006, शिक्षक-सामाजिक परिवर्तन का अभिकर्ता?, *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, वर्ष-24, अंक-3, जनवरी-2006, पृ.सं. 15-26
- शुक्ला, ग्रीष्मा, 2006, अध्यापक शिक्षा की क्षेत्र प्रासंगिकता: विद्यालयी शिक्षकों का प्रत्यक्षीकरण, *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, वर्ष-24, अंक-3, जनवरी 2006, पृ.सं. 59-68
- तोमर, लज्जाराम, 1995, *भारतीय शिक्षा के मूल तत्व*, सुरुचि प्रकाशन, नयी दिल्ली

शिक्षक ऐसा हो!

जितेन्द्र कुमार पाटीदार*

वैश्वीकरण, सार्वजनीकरण एवं निजीकरण के इस युग में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा प्रायः जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त चलती रहती है। बालक की शिक्षा पारिवारिक वातावरण से प्रारंभ हो जाती है परंतु औपचारिक शिक्षा की प्रक्रिया विद्यालय में चलती है जिसके द्वारा हर बालक को भावी जीवन के लिए तैयार किया जाता है। जीवन निर्माण की इस प्रक्रिया में एक रचनाकार या निर्माणकर्ता के रूप में शिक्षक की अहम भूमिका होती है। शिक्षा के क्षेत्र में आज नवीन चुनौतियाँ उभरकर सामने आ रही हैं। इन चुनौतियों का सामना करने की क्षमता विकसित करने के लिए शिक्षकों की तैयारी में बदलाव लाने की ज़रूरत है। शिक्षा के बदलते स्वरूप के संदर्भ में एक भावी शिक्षक में मुख्य रूप से जो कौशल व योग्यताएँ होनी चाहिए, उन्हीं की चर्चा इस लेख में की गई है।

यद्यपि 1960 के दशक से ही शिक्षकों की पेशेवर तैयारी को अत्यावश्यक माना जाता रहा है, लेकिन इसका ज़मीनी यथार्थ सोचनीय है। कोठारी आयोग (1964-66) ने इस पर ज़ोर दिया है कि शिक्षक की शिक्षा को अकादमिक जीवन की मुख्य धारा से जोड़ा जाना चाहिए, लेकिन शिक्षा संस्थान अभी तक संकीर्णता से बाहर नहीं निकल पाए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा आयोग (1983) ने शिक्षकों की शिक्षा के लिए अनुशांसा की थी कि किसी भी शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में एक अच्छा शिक्षक बनने के लिए विद्यार्थी-शिक्षक को आधारभूत कौशलों एवं क्षमताओं को अर्जित करने की योग्यता होनी चाहिए। जैसे-विद्यार्थियों की प्रबल क्षमताओं का ध्यान रखते हुए कक्षा प्रबंधन की क्षमता, तार्किक एवं स्पष्ट विचारों का

* सहायक प्राध्यापक, अध्यापक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

संप्रेषण, शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए उपलब्ध तकनीकी की उपयोगिता, कक्षा के बाहर के शैक्षिक अनुभवों से शिक्षित करना, समुदाय के साथ काम करना सीखना और विद्यार्थियों की मदद करना आदि। इसके साथ ही, शिक्षक शिक्षा के लिए विद्यार्थी-शिक्षकों का चयन करने हेतु निम्न घटकों का ध्यान रखने का सुझाव भी दिया -

- (क) शारीरिक रूप से स्वस्थ हो,
- (ख) भाषिक योग्यता एवं संप्रेषण कौशल,
- (ग) सामान्य मानसिक योग्यता,
- (घ) सामान्य रूप से संसार की जानकारी हो,
- (ङ) जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण हो,
- (च) अच्छे मानवीय संबंध विकसित करने की क्षमता।

आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि शिक्षकों की भूमिका से संबंधित विभिन्न कौशलों को सीखना, जिसमें शैक्षिक तकनीकी एवं सॉफ्टवेयर तैयार करना भी है। विद्यार्थी-शिक्षकों को, कौशलों के उपयोग में दक्ष होना चाहिए तथा सहपाठियों में भी यह क्षमता विकसित करने की कोशिश करनी चाहिए। विशेषकर, शैक्षिक तकनीकी (ICT) के हार्डवेयरों के रख-रखाव में दक्ष होना चाहिए तथा उन्हें सॉफ्टवेयरों के लिए उपलब्ध स्रोतों की जानकारी भी होनी चाहिए। शिक्षा संस्थानों को उनके विद्यार्थी-शिक्षकों को पाठ्य-सहगामी गतिविधियों की योजना एवं संगठन के कौशल विकसित करने वाली कार्यशालाएँ आयोजित करनी चाहिए या विद्यार्थी-शिक्षकों को कार्यशालाओं में

सहभागी के रूप में भेजना चाहिए। इसके लिए राष्ट्रीय/क्षेत्रीय/स्थानीय नाटक विद्यालयों एवं फिल्म संस्थानों की सहायता ले सकते हैं।

शैक्षिक/व्यावसायिक तैयारी के लिए जैसे-शिक्षणशास्त्र, कौशलों का विकास जिसमें कहानी-कथन, पठन, श्यामपट्ट पर लिखना, नयी तकनीकी जैसे-कंप्यूटर, एल. सी. डी., दृश्य-श्रव्य उपकरण, मॉडल आदि का उपयोग करना महत्वपूर्ण है। कला, संगीत, नृत्य एवं क्राफ्ट पर भी अनिवार्य रूप से ध्यान देने, भाषा एवं संप्रेषण में विशेष दक्षता तथा मूल्यों पर पर्याप्त जोर दिए जाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 पर पुनर्विचार समिति-1990 ने शिक्षकों को तैयार करने के अनेक सुझाव दिए। जिनमें प्रमुख रूप से शिक्षा के क्रियात्मक कौशलों एवं ज्ञानात्मक तथा भावात्मक पक्ष के सभी पहलुओं का ज्ञान प्रदान करने की क्षमता विकसित करना, स्तरीकृत समाज में शिक्षा की भूमिका की समझ तथा इस भूमिका का क्रियात्मक अर्थ प्रदान करने की योग्यता विकसित करना शामिल है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित व्यक्तिगत लक्षण भी होने चाहिए-

- (क) स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने एवं सोचने की योग्यता,
- (ख) प्रचलन के विरुद्ध या लोकप्रिय मतानुसार कार्य करने की योग्यता,
- (ग) उत्प्रेरक एवं समझदार लोगों के साथ कार्य करने की योग्यता,
- (घ) समझ एवं अनुभव के आधार पर नेतृत्व करने की क्षमता,

- (ड) सृजनात्मकता एवं स्थिर क्रिया के लिए योग्यता,
- (च) मानवीय एवं वित्तीय संसाधनों को संगठित करने की योग्यता,
- (छ) समाज एवं शासन के विभिन्न विभागों के साथ कार्य करने की योग्यता,
- (ज) उपलब्धि के लिए उच्च अभिप्रेरणात्मक आवश्यकताएँ होना,
- (झ) उपलब्धि की इच्छा एवं प्रतिकूल स्थितियों में कार्य करने की योग्यता,
- (ञ) उत्तरदायित्व स्वीकारने एवं ज़िम्मेदारियों को समझने की इच्छाशक्ति तथा उच्च अंतर्वैयक्तिक कौशल।

यशपाल समिति की रिपोर्ट(1993), 'शिक्षा बिना बोझ के' में कहा गया है, 'इन कार्यक्रमों में जोर इस पर हो कि विद्यार्थी-शिक्षकों में स्व-अधिगम और स्वतंत्र-चिंतन का विकास हो सके।'

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 (NCF-2005) में भी शिक्षकों के लिए आवश्यक तैयारी हेतु निम्न सुझाव दिए गए हैं-

- (क) शिक्षकों की ऐसी तैयारी ज़रूरी है कि वे विद्यार्थियों का ध्यान रख सकें और उनके साथ रहना पसंद करें।
- (ख) सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संदर्भों में विद्यार्थियों को समझ सकें।
- (ग) ग्रहणशील और निरंतर सीखने वाले हों।
- (घ) शिक्षा को अपने व्यक्तिगत अनुभवों की सार्थकता की खोज के रूप में देखें तथा

ज्ञाननिर्माण को मननशील अधिगम की लगातार उभरती प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करें।

- (ड.) ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के बाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखें।
- (च) समाज के प्रति अपना दायित्व समझें और, बेहतर विश्व के लिए काम करें।
- (छ) उत्पादक कार्य के महत्त्व को समझें तथा कक्षा के बाहर और अंदर व्यावहारिक अनुभव देने के लिए कार्य को शिक्षण का माध्यम बनाएँ।
- (ज) पाठ्यचर्या की रूपरेखा, उसके नीतिगत-निहितार्थ एवं पाठों का विश्लेषण करें।

21 वीं शताब्दी के शिक्षकों में वैश्वीकरण, सार्वजनीकरण, निजीकरण तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं राजनीतिक संदर्भों के कारण उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए कई कौशलों की आवश्यकता होगी। शिक्षा के अधिकार अधिनियम-2009 के अनुसार शिक्षक को विद्यालय में अपनी उपस्थिति और नियमितता बनाए रखनी होगी। पूरी पाठ्यचर्या को निर्धारित समय में पूरा करना होगा। प्रत्येक बच्चे की अधिगम योग्यता का आकलन करना होगा और उसी के अनुसार आवश्यक निर्देश देने होंगे। शिक्षक को अभिभावकों से नियमित बैठकें करनी होंगी और अभिभावकों को उनके बच्चों की उपस्थिति में नियमितता, सीखने की योग्यता,

सीखने में की गई प्रगति और बच्चे के बारे में किसी भी अन्य सार्थक सूचना से अवगत कराना होगा।

साथ ही, विद्यालयी शिक्षा में परिवर्तन यह संकेत दे रहे हैं कि भविष्य में विद्यालयों में आरंभिक शिक्षा ले रहे बच्चों के शिक्षक को नया रूप लेना होगा। उसे समझना होगा कि प्रत्येक बच्चा अपने आप में अलग है और अपनी गति से सीखता है। प्रत्येक बच्चे की शैक्षिक आवश्यकता को पूरा करने का उत्तरदायित्व उसके कंधों पर है। किसी भी कक्षा में, वर्ष में किसी भी समय बच्चे का प्रवेश और उस बच्चे को अन्य बच्चों के समकक्ष ले जाना उस शिक्षक के लिए चुनौती होगी। साथ ही, अधिगम परिस्थितियों के निर्माण के क्षेत्र में कई लोगों की भागीदारी होने से शिक्षकों की नयी दक्षताओं की माँग बढ़ गई है, ताकि उनसे सार्थक ढंग से मदद ली जा सके। उन्हें यह सोचना है कि इन कौशलों एवं योग्यताओं को शिक्षा, प्रशिक्षण या अनुभव से कैसे जोड़ या बढ़ा सकते हैं। यदि वे निरन्तर अपना विकास एवं कौशलों की वृद्धि करेंगे तो आपको शैक्षिक/व्यावसायिक वृद्धि हेतु बहुत अवसर मिलेंगे। इसलिए उन्हें कार्यस्थल में सफलता के आवश्यक विभिन्न कौशलों के बारे में अधिक सीखना होगा।

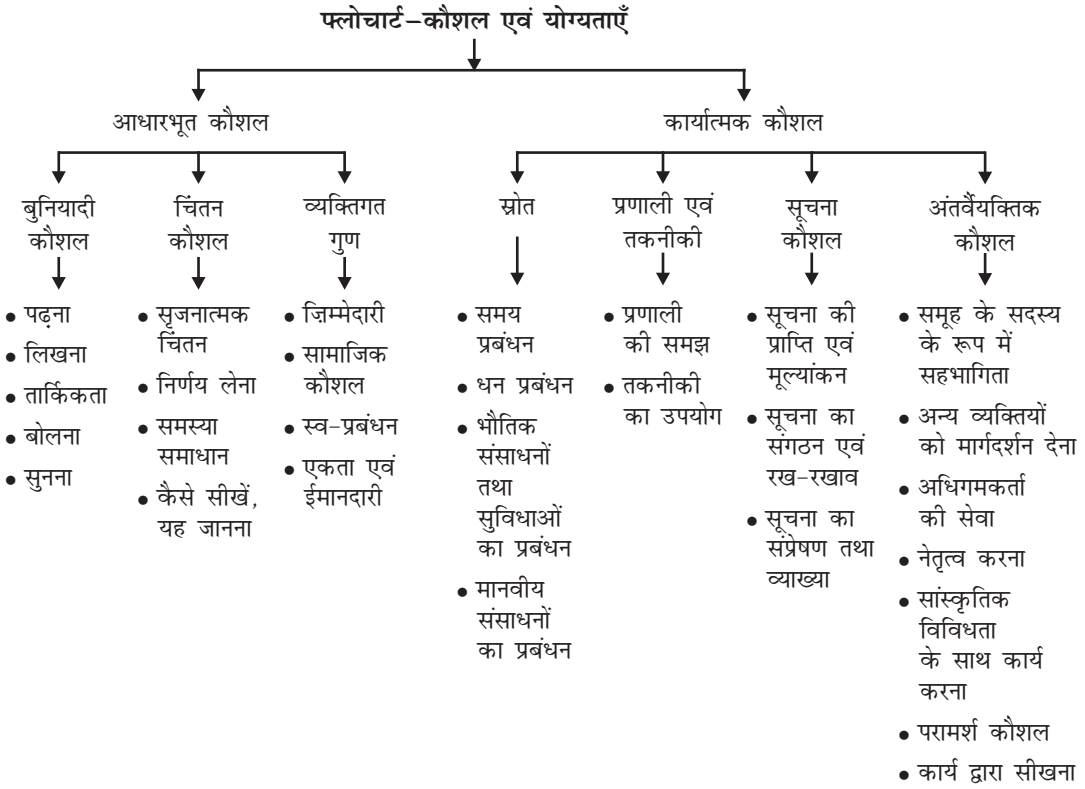
कौशल एवं योग्यताएँ

प्रत्येक व्यक्ति में कौशल एवं योग्यताएँ होती हैं। कुछ व्यक्तियों में विलक्षण प्रतिभा एवं अभिक्षमताएँ

होती हैं, जिसमें संगीत योग्यताएँ (वाद्ययंत्र बजाना, संगीत तैयार करना एवं गाना आदि), कलात्मक कौशल (चित्रकला, मूर्तिकला एवं शिल्पकला आदि), खेलकूद कौशल (खेलना, कूदना एवं दौड़ना आदि), सामाजिक कौशल (नेतृत्व करना, समूह में कार्य करना एवं प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों में जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार करना आदि) या अन्य कई योग्यताएँ जो प्राकृतिक या सामान्य रूप से विकसित हो जाती हैं। कुछ कौशल एवं योग्यताओं का हम प्रतिदिन उपयोग करते हैं, जैसे—नया विडियो/मोबाइल गेम सीखना, कंप्यूटर एवं अन्य घरेलू उपकरण सुधारना, मित्रों की समस्याएँ सुनना तथा उचित समाधान हेतु निर्णय लेना आदि।

कुछ बहुत ही विशिष्ट एवं अलग तरह के कार्य होते हैं, जैसे—प्रभावी शिक्षण हेतु नवीन शिक्षण विधियों एवं सहायक सामग्री का उपयोग करना सीखना, मूल्यांकन की नवीन विधियाँ सीखना, अद्यतन जानकारी एवं प्रभावी शिक्षण हेतु सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) का उपयोग करना, नए सॉफ्टवेयर प्रोग्राम सीखना एवं बजट का प्रबंधन करने के लिए वित्तीय नियमों की व्याख्या करना आदि।

अतः, उक्त अध्ययन के आधार पर भावी शिक्षकों में जो कौशल एवं योग्यताएँ होनी चाहिए, उन्हें मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है। इन दो भागों को भी अलग-अलग भागों में वर्गीकृत कर विस्तृत व्याख्या की गई है जिसे फ्लोचार्ट में दर्शाया गया है।



- (1) **आधारभूत कौशल**-शिक्षकों के लिए आवश्यक कौशल, इन्हें स्थानांतरणीय कौशल भी कहते हैं।
- (2) **कार्यात्मक कौशल**-शिक्षक के कार्य से संबंधित विशिष्ट कार्यात्मक कौशल।

आधारभूत कौशल

(1) बुनियादी कौशल

- (क) **पढ़ना**-किताबों, रिपोर्टों, दिशा-निर्देशों आदि में लिखित सूचनाओं को पहचानना, समझना तथा व्याख्या करना। लिखित सूचना के मुख्य संदेश या मुख्य विचार पर निर्णय लेना सीखना।

- (ख) **लिखना**-चिंतन, विचार, सूचना एवं संदेशों को लिखित में संप्रेषित करना। अधिगमकर्ता, उद्देश्य एवं विषयवस्तु के अनुसार उपयुक्त भाषा, शैली, संरचना तथा निर्धारित प्रारूप में पत्र, रिपोर्ट, प्रस्ताव, ग्राफ़, फ्लोचार्ट, दिशा-निर्देश, निर्देशिका आदि लिखना।

- (ग) **तार्किकता**-बुनियादी गणनाओं में आधारभूत संकल्पनाओं का उपयोग करना जैसे-प्रायोगिक स्थिति में पूर्णांक तथा प्रतिशतांक। मात्रात्मक सूचना को समझने के लिए सारणी, ग्राफ़, आरेख, चार्ट आदि का प्रयोग करना।

- (घ) बोलना-परिस्थिति एवं सुनने वालों के अनुसार उपयुक्त संगठित विचारों का मौखिक संप्रेषण करना। सहभागी के रूप में समूह प्रस्तुतीकरण, विचार-विमर्श तथा चर्चा में स्पष्ट बोलना।
- (ङ) सुनना-सावधानीपूर्वक सुनना एवं समझना तथा सुनने वालों को उचित प्रतिपुष्टि देना। स्वीकारने, व्याख्या करने तथा प्रतिक्रिया व्यक्त करने में वाचिक संदेशों के साथ शारीरिक भाषा (हाव-भाव) का उपयोग करना।
- (2) चिंतन कौशल**
- (क) सृजनात्मक चिंतन-मुक्त चिंतन करना, नए तरीके से सूचनाओं या विचारों को जोड़ना, अलग-अलग विचारों के मध्य संबंध बनाना तथा नवीन संभावनाओं को प्रकट करने में उद्देश्यों का पुनर्निर्धारण करना।
- (ख) निर्णय लेना-विशिष्ट उद्देश्यों एवं प्रतिबंधों का निर्धारण करना, विकल्पों का निर्माण करना, जोखिम समझना, अच्छे विकल्प का चयन एवं मूल्यांकन करना।
- (ग) समस्या समाधान-समस्या उत्पन्न होने के कारणों को पहचानना, समस्या के समाधान के लिए संभावित कारणों की पहचान कर योजना बनाना तथा उसका क्रियान्वयन करना। योजना के क्रियान्वयन की प्रगति को मॉनीटर कर मूल्यांकन करना तथा प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर योजना पर पुनर्विचार करना।
- (घ) कैसे सीखें, यह जानना-एक समान तथा अलग-अलग परिस्थितियों में नए ज्ञान एवं कौशलों का उपयोग करना तथा सीखना एवं गलत अवधारणाओं के प्रति जागरूक रहना, अन्यथा वह गलत परिणाम दे सकती हैं।
- (3) व्यक्तिगत गुण**
- (क) जिम्मेदारी-लक्ष्य प्राप्ति के लिए दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करना, उत्कृष्ट स्तर का कार्य करना, पूर्णता पर ध्यान केंद्रित करना, दिए गए अरुचिकर कार्य को भी अच्छा करना, उच्च स्तर की एकाग्रता का गुण प्रदर्शित करना।
- (ख) सामाजिक कौशल-समूह में समझदारी, बंधुत्व, सहमति, विनम्रता एवं तादात्म्य का परिचय देना, स्वयं द्वारा अच्छी एवं बुरी सामाजिक परिस्थितियों में आत्मविश्वासपूर्ण व्यवहार करना, दूसरों से अच्छे संबंध स्थापित करना, उचित प्रतिक्रिया देना, लोग क्या कहेंगे? इस बात पर ध्यान न देकर रुचिपूर्वक कार्य करना।
- (ग) स्व-प्रबंधन-स्वयं के ज्ञान, कौशल एवं योग्यताओं का सही आकलन करना, स्पष्ट एवं वास्तविक व्यक्तिगत लक्ष्य होना, लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रगति को मॉनीटर करना तथा स्वयं को लक्ष्य की उपलब्धि पर अभिप्रेरित करना, स्व-नियंत्रण प्रदर्शित करना तथा प्रतिपुष्टि पर बिना भाव के प्रतिक्रिया व्यक्त करना, स्वयं शुरुआत करने वाला बनना।

(घ) एकता एवं ईमानदारी-विश्वास होना, निर्णय लेने में आने वाली समस्याओं का सामना करना, सामाजिक एवं व्यक्तिगत मूल्यों को सामान्यतः कार्य के अनुसार बनाए रखना, संगठन, स्वयं तथा अन्यो के प्रति नियम एवं विश्वास की समझ होना, कार्य के लिए नैतिकता का चयन करना।

कार्यात्मक कौशल

(1) स्रोत

- (क) समय प्रबंधन-महत्वपूर्ण तथा लक्ष्य से संबंधित गतिविधियों का चयन करना, उन्हें महत्ता के अनुसार क्रम प्रदान करना तथा गतिविधियों का समय निर्धारण करना।
- (ख) धन प्रबंधन-योजनानुसार बजट तैयार करना व उपयोग करना, बजट में दर्शायी गई मदों के अनुसार धन व्यय करना तथा मॉनीटर करना, बजट निष्पादन एवं उचित समायोजन के सभी दस्तावेज रखना।
- (ग) भौतिक संसाधनों तथा सुविधाओं का प्रबंधन-भौतिक संसाधनों तथा सुविधाओं का अधिकतम उपयोग करना तथा उनकी प्राप्ति, संग्रहण एवं वितरण उचित ढंग से करना।
- (घ) मानवीय संसाधनों का प्रबंधन-शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य व्यक्तियों के ज्ञान, कौशल, योग्यता एवं क्षमता का आकलन करना, वर्तमान तथा भविष्य के कार्यभार को पहचानना, व्यक्तिगत प्रतिभा एवं कार्यभार के मध्य प्रभावी संबंध बनाना,

निष्पादन को मॉनीटर करना एवं प्रतिपुष्टि प्रदान करना।

(2) प्रणाली एवं तकनीकी

- (क) प्रणाली की समझ-यह जानना कि शैक्षणिक, संस्थागत, सामाजिक एवं तकनीकी प्रणाली कैसे कार्य करती है, तथा उनका प्रभावी संचालन। सेवाओं, उन्नति तथा प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव देना तथा गुणवत्ता नियंत्रण एवं सुधार हेतु वैकल्पिक या नवीन प्रणाली का विकास करना।
- (ख) तकनीकी का उपयोग-वांछनीय परिणामों की प्राप्ति के लिए कौन-सी मशीन/उपकरण या प्रक्रिया उपयुक्त होगी, इसका अनुमान लगाना। मशीन के संचालन के लिए व्यवस्थित प्रक्रिया के साथ कंप्यूटर एवं उसकी प्रोग्रामिंग तथा उद्देश्यों को समझना। कंप्यूटर, मशीन या अन्य तकनीकी की सुरक्षा तथा चिह्नित समस्याओं का समाधान करना।

(3) सूचना कौशल

- (क) सूचना की प्राप्ति एवं मूल्यांकन-तथ्यों के लिए आवश्यकता की पहचान करना, अस्तित्व में है। उन स्रोतों से या नवीन स्रोतों से तथ्य प्राप्त करना तथा उनकी शुद्धता एवं प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।
- (ख) सूचना का संगठन एवं रख-रखाव-सूचना को लिखित या कम्प्यूटराइज्ड रिकॉर्ड एवं अन्य तरीके से व्यवस्थित रखना तथा संगठित करना।

(ग) सूचना का संप्रेषण तथा व्याख्या-चयनित तथा विश्लेषित सूचना एवं परिणामों को मौखिक, लिखित, ग्राफिक, चित्रात्मक तथा मल्टीमीडिया विधि से अन्य लोगों के उपयोग हेतु संप्रेषित करना।

(4) अंतर्व्यक्तिक कौशल

(क) समूह के सदस्य के रूप में सहभागिता-सामूहिक प्रयासों में अपने विचार, सुझाव तथा प्रयासों से सहयोग देना तथा अन्यो के साथ मिलकर कार्य करना। समूह के लाभ के लिए निश्चय करना तथा लक्ष्य को पूरा करने के लिए व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी लेना।

(ख) अन्य व्यक्तियों को मार्गदर्शन देना-आवश्यक सूचना तथा कौशल प्राप्त करने में अन्य लोगों की मदद करना। आवश्यक प्रशिक्षण की पहचान करना तथा अन्य लोगों की मदद हेतु आवश्यक सूचना प्रदान करना, जो उनके कार्य के लिए प्रासंगिक तथा उपयोगी हो।

(ग) अधिगमकर्ता की सेवा-अधिगमकर्ता की अपेक्षा को संतुष्ट करने के लिए उनके साथ काम करना, अधिगमकर्ता की बात ध्यानपूर्वक सुनना, उनकी गलत धारणा को दूर करना एवं उनकी आवश्यकताएँ पहचानना, विशेषकर विवाद या शिकायत की स्थिति में सकारात्मक तरीके से समाधान करना।

(घ) नेतृत्व करना-अपने चिंतन, विचार व अनुभव के आधार पर पद के प्रति न्याय करना, समूह या व्यक्ति को अभिप्रेरित करना तथा विश्वास कराना, वर्तमान में चल रही नीतियों एवं प्रक्रियाओं की चुनौतियों की ज़िम्मेदारी लेना।

(ङ) सांस्कृतिक विविधता के साथ कार्य करना-पुरुषों एवं महिलाओं के साथ अच्छा कार्य करना, क्योंकि वह विभिन्न सामाजिक एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि के होते हैं। व्यक्तिगत निष्पादन के आधार पर प्रभावी बनना, न कि दृढ़ बनना।

(च) परामर्श कौशल-परामर्श के कौशल और क्षमताओं का विकास करना ताकि विद्यार्थियों की शैक्षणिक, व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं का समाधान सुझाने में सहायता कर सकें।

(छ) कार्य द्वारा सीखना-कार्य के द्वारा विभिन्न विषयों का ज्ञान, विविध मूल्यों और विविध कौशलों के विकास के साथ किस प्रकार प्राप्त होता है? इसकी शिक्षा देना सीखना।

उपसंहार

विद्यालयी शिक्षा में हम शिक्षक से सदा से ही बहुत-सी अपेक्षाएँ रखते आए हैं। शिक्षा से संबंधी विभिन्न आयोगों और समितियों ने शैक्षिक सुधार का ज्यादा से ज्यादा दायित्व शिक्षकों और शिक्षकों को तैयार करने वाली संस्थाओं पर डाला है। परन्तु चिंता का विषय यह है कि इतनी महत्वपूर्ण भूमिका में होते हुए भी आज का शिक्षक अपने

कर्मक्षेत्र में अपनी उपस्थिति और कर्मठता से परिवर्तन नहीं ला पा रहा है। पिछले कई दशकों से हमने शिक्षकों पर से अपना विश्वास तो खोया ही है साथ ही शिक्षक भी व्यवस्थागत परिवर्तन के साथ कदम मिलाकर नहीं चल पाए हैं। जब इस स्थिति का हम विश्लेषण करते हैं तो निम्नलिखित कारण दिखाई देते हैं-

1. शिक्षकों की तैयारी नयी पाठ्यचर्या के प्रकाश में न होना — इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्कूली पाठ्यचर्या में परिवर्तन और शिक्षक-शिक्षा में परिवर्तन के बीच गहरा संबंध है और इसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए। परंतु हमारी शिक्षा व्यवस्था में इस पहलू और इसके लिए किए गए प्रयासों में कमी है। राष्ट्रीय स्तर पर स्कूली पाठ्यचर्या की रूपरेखा के साथ शिक्षक-शिक्षा की पाठ्यचर्या की रूपरेखा का भी निर्माण किया जाता है, परंतु राज्यों द्वारा इसे लागू करने में लंबा समय लग जाता है और तब नए परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में नयी जरूरतें सामने आ जाती हैं। इस प्रकार पूर्व सेवा शिक्षक-शिक्षा तथा सेवारत

शिक्षक-शिक्षा दोनों ही पिछले कई दशकों से कई राज्यों में पारंपरिक ढंग से ही दी जा रही हैं। यदि परिवर्तन है भी तो कुछेक प्रश्नपत्रों (कोर्स) में, न कि पूरे उपागम में।

2. शिक्षक-प्रशिक्षकों का पुनर्अभिमुखिकरण न होना — यह भी एक चिंता का विषय है। शिक्षकों की तैयारी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले ज्यादा संख्या में शिक्षक-प्रशिक्षक शैक्षिक परिवर्तनों से अनभिज्ञ रहते हैं। इसका कारण है उनके अभिमुखिकरण की एक निरंतर व्यवस्था का न होना। कुछ शैक्षिक संस्थाएँ पहल कर यह कार्य करती भी हैं तो उनका प्रबोधन न होने के कारण इन प्रयत्नों का प्रभाव नहीं दिखता।

उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि आज शिक्षा में हमारे प्रयासों का केंद्र बिंदु होना चाहिए 'शिक्षक की तैयारी'। उसमें ऐसे कौशल विकसित किए जाने चाहिए ताकि वह शिक्षा के अधिकार, माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण आदि से पनपती नित नयी चुनौतियों का बखूबी सामना कर सके।

संदर्भ

- एन.सी.टी.ई., 1988, *पॉलिसी पर्सपेक्टिव इन टीचर एजुकेशन : क्रिटिक एण्ड डॉक्यूमेंटेशन*, एन.सी.टी.ई., नयी दिल्ली
- एन.सी.ई.आर.टी., 2006, *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005*, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
- एन.सी.ई.आर.टी., शिक्षक शिक्षा : नयी दृष्टि, *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, अंक-3, वर्ष-30, नयी दिल्ली, जनवरी 2010
- अरोड़ा, रंजना एवं राजरानी, शिक्षा का मौलिक अधिकार : कुछ मुद्दे और कुछ चुनौतियाँ, *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, अंक-1, वर्ष-31, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, जुलाई, 2010
- <http://www.soicc.state.nc.us/soicc/planning/skillsjob.htm>

जेंडर असमानता : एक ऐतिहासिक अध्ययन

अनुज कुमार*

समाज का निर्माण स्त्री-पुरुष की भागीदारी से होता है। विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रखने वाली नारी की स्थिति सदैव परिवर्तित होती रही है। प्राचीनकाल में महिला को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। धर्मशास्त्रों एवं वैदिक ग्रंथों के आधार पर उन्हें पुरुषों की तरह सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त थे। कहीं-कहीं तो उन्हें गुरु से भी श्रेष्ठ माना गया है। इसके विपरीत कुछ धर्मशास्त्रों में नारी को दोयम दर्जे की बात कही गई है। हमारे देश में जितने पुराने रीति-रिवाज हैं उतनी ही पुरानी है महिला के संदर्भ में होने वाली मानवाधिकारों के हनन की प्रामाणिकता। बालिका भ्रूण हत्या, वेश्यावृत्ति, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा, दहेज प्रथा, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, स्त्री शिक्षा पर रोक, डायन प्रथा एवं दासी प्रथा आदि कुप्रथाओं के प्रचलन का एक लंबा इतिहास है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण आरंभिक काल से जेंडर असमानता यथा-शोषण, उत्पीड़न, पक्षपात और दुराग्रहों का सामना महिलाओं को करना पड़ता है। यह असमानता परिवार से लेकर सरकारी नीतियों में भी दृष्टिगोचर होती है। गैर-बराबरी की सामाजिक व्यवस्था में काम के बंटवारे, बहुआयामी काम का बोझ, घरेलू काम की ज़िम्मेदारियाँ आदि कई ऐसे मामले हैं जो चिरकाल से प्रचलन में हैं। आधुनिक समाज में भी ऐसी स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। हमारा समाज अपनी परंपराओं को तोड़ने हेतु पूरी तरह तैयार नहीं है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद महिलाओं के खिलाफ सामाजिक पूर्वाग्रह कायम है। आधी आबादी की स्थिति में सुधार के बगैर बेहतर समाज की कल्पना संभव नहीं है। वैचारिक क्रांति के द्वारा ही महिला सशक्तीकरण के आंदोलन को अपने मुकाम तक पहुँचाने का प्रयास सफल हो सकता है।

*अध्यापक, जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर, जिला-रीवा, मध्यप्रदेश

समाज का निर्माण स्त्री-पुरुष के सहयोग से होता है। इसका आशय है कि सामाजिक व्यवस्था के संचालन में दोनों की समान भागीदारी। महिलाओं की स्थिति को लेकर प्रारंभ से अब तक दो तरह के विचार मौजूद हैं- एक वह, जो उसे परंपरागत रूप से पुरुषों के अधीन एवं गृहिणी के रूप में समझते हैं। वहीं दूसरी ओर, एक समुदाय ऐसा है जो उसे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक रूप से सशक्त स्वीकारता है। विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रखने वाली नारी की स्थिति सदैव परिवर्तित होती रही है। प्राचीनकाल में महिला को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। धर्मशास्त्रों एवं वैदिक ग्रंथों के आधार पर उन्हें पुरुषों की तरह सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त थे। अथर्ववेद में तो उन्हें घर एवं परिवार की साम्राज्ञी कहा गया है। जीवनसाथी चुनने, वैदिक कर्मों में पतियों के साथ भाग लेने की चर्चा है। कहीं-कहीं तो उन्हें गुरु से भी श्रेष्ठ माना गया है। इसके विपरीत कुछ धर्मशास्त्रों में नारी को दोगम दर्जे की बात कही गई है। मनुसंहिता में महिलाओं पर आजीवन नियंत्रण रखने की चर्चा है। हमारे देश में जितने पुराने रीति-रिवाज हैं उतनी ही पुरानी है महिला के संदर्भ में होने वाली मानवाधिकारों के हनन की प्रामाणिकता। बालिका भ्रूणहत्या, वेश्यावृत्ति, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा, दहेज प्रथा, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, स्त्री शिक्षा पर रोक, डायन प्रथा एवं दासी प्रथा आदि कुप्रथाओं के प्रचलन का एक लंबा इतिहास है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण आरंभिक काल से जेंडर

असमानता यथा-शोषण उत्पीड़न, पक्षपात और दुराग्रहों का सामना महिलाओं को करना पड़ता है।

इतिहास की बात की जाए तो बौद्धकाल में महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति अच्छी नहीं थी, लेकिन योग्य महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। बौद्ध मठों में भिक्षुणियों के शिक्षण की व्यवस्था रहती थी, किंतु आम स्त्रियों में शिक्षा का हास हो रहा था। स्त्रियों पर कुछ नए सामाजिक प्रतिबंध लगाए गए थे।

हमारे ऐतिहासिक साहित्य में ऐसी बातों का भी उल्लेख किया गया है जिनके आधार पर पत्नियों का परित्याग किया जा सकता है। इन आधारों में मद्यपान, दुश्चरित्रता, असाध्य रोग, अपव्यय, बंध्यात्व, कटु भाषण, केवल पुत्रियों का जन्म आदि बातें शामिल थीं। कालक्रम में लड़कियों को उपनयन के अधिकार से वंचित कर दिया गया। पितृप्रधान परिवारों के उदय से परिवार में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी। मध्यकालीन युग में मुस्लिम आक्रमणकारियों के आने के बाद यह गिरावट बढ़ती गई। पर्दा प्रथा का प्रसार हुआ जिससे भारतीय महिलाओं के शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रियाकलाप को गहरा धक्का लगा। महिलाओं को भोग्या के रूप में समझा जाने लगा। ब्रिटिश शासन काल के प्रारंभिक चरणों में देश में महिलाओं की स्थिति अत्यंत खराब हो चुकी थी। अनेक सामाजिक व धार्मिक कुप्रथाओं का सर्वाधिक असर महिलाओं पर ही था। भारत में पुरुषों की अपेक्षा महिला साक्षरता के निम्न दर की पृष्ठभूमि भी ऐतिहासिक कारणों से रही है। उन समाजों में

जहाँ लड़कों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था वहीं लड़कियों को अक्षर तक सीखने की अनुमति नहीं थी। यहाँ तक कि उन परिवारों में भी जहाँ कुम्हारी, बुनकरी और हस्तकला सिखाई जाती थी-यह धारणा थी कि लड़कियों और औरतों का काम केवल सहायता करने तक ही सीमित है। उन्नीसवीं शताब्दी में शिक्षा के बारे में कई नए विचारों ने जन्म लिया। विद्यालय अधिक प्रचलन में आ गए और वे समाज, जिन्होंने स्वयं कभी पढ़ना-लिखना नहीं सीखा था अपने बच्चों को स्कूल भेजने लगे। तब भी लड़कियों की शिक्षा को लेकर बहुत विरोध हुआ। इसके बावजूद बहुत-सी स्त्रियों और पुरुषों ने बालिकाओं के लिए स्कूल खोलने के प्रयत्न किए। स्त्रियों ने पढ़ना-लिखना सीखने के लिए संघर्ष किया। प्रसंगवश यहाँ राससुन्दरी देवी (1800-1890) के जीवन की चर्चा उचित जान पड़ती है। बंगाल में जन्मी राससुन्दरी देवी ने साठ वर्ष की अवस्था में बांग्ला भाषा में अपनी आत्म कथा "आमार जीवन" नामक पुस्तक में लिखी। उस समय लोगों का विश्वास था कि यदि लड़की लिखती-पढ़ती है तो वह पति के लिए दुर्भाग्य लाती है और विधवा हो जाती है। इसके बावजूद उन्होंने अपनी शादी के बहुत समय बाद स्वयं ही छुप-छुप कर लिखना-पढ़ना सीखा। रूकैया शेखावत हुसैन भी एक धनी परिवार में जन्मी महिला थीं जो उर्दू पढ़ना-लिखना जानती थीं परंतु उन्हें बांग्ला और अंग्रेजी सीखने से रोका गया। उस समय अंग्रेजी को एक ऐसी भाषा के रूप में देखा जाता था जो लड़कियों के सामने नए विचार

रखती थी, जिन्हें लोग लड़कियों के लिए ठीक नहीं मानते थे। इसलिए अंग्रेजी अधिकतर लड़कों को ही पढ़ाई जाती थी। रूकैया ने अपने बड़े भाई और बहन के सहयोग से बांग्ला और अंग्रेजी पढ़ना-लिखना सीखा और आगे जाकर वो एक लेखिका बनीं।

शिक्षा प्राप्त करके कुछ महिलाओं ने समाज में स्त्रियों की स्थिति के बारे में प्रश्न उठाए। उन्होंने असमानता के अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए कहानियाँ, पत्र और आत्मकथाएँ लिखीं। अपने लेखों में उन्होंने स्त्री और पुरुष दोनों के लिए सोचने और जीने के नए-नए तरीकों की कल्पना की। राससुन्दरी देवी और रूकैया हुसैन जिन्हें पढ़ने-लिखने की अनुमति नहीं मिली थी, की स्थिति के विपरीत वर्तमान भारत में बड़ी संख्या में लड़कियाँ स्कूल जा रही हैं। इसके बावजूद भी बहुत-सी लड़कियाँ गरीबी, शिक्षण सुविधाओं के अभाव और भेद-भाव के कारण स्कूल जाना छोड़ देती हैं। सभी समाजों और वर्गों की पृष्ठभूमि वाले बच्चों को शिक्षण की समान सुविधाएँ प्रदान करना, विशेषकर लड़कियों को आज भी भारत में एक चुनौती है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मुस्लिम और दलित पृष्ठभूमि की लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर सर्वाधिक है। पारंपरिक समाज में महिला और पुरुषों के बीच कई तरह से भेदभाव किया जाता रहा है। ये भेदभाव पूर्वाग्रहों या रूढ़िबद्ध धारणाओं के आधार पर किए जाते रहे हैं। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है

कि प्राचीन समय में स्त्रियों की शिक्षा संबंधी व्यवस्था उन्नत थी। बहुत-सी नारियों ने वैदिक ऋचाओं तक की रचना की है। जैसे अत्रिकुल की विश्ववारा, अपाला, घोषा, काक्षीवती ने सूक्तों की रचना की है। माता-पिता स्वयं अपनी कन्या को ब्रह्मचर्य जीवन में समुचित शिक्षा दिया करते थे। अध्ययनरत छात्राओं की दो श्रेणियाँ थी। प्रथम श्रेणी की छात्राएँ “ब्रह्मावादिनी” कही जाती थीं जो आजीवन दर्शनशास्त्र एवं अध्यात्म का अध्ययन करती थीं, वहीं दूसरी श्रेणी की छात्राएँ “सद्योवधू” कहलाती थीं जो विवाह के पूर्व तक अपना अध्ययन जारी रखती थीं। कन्याओं के लिए वेदाध्ययन आवश्यक था क्योंकि स्त्रियों को नियमित रूप से प्रातः, संध्या वैदिक प्रार्थनाएँ करनी पड़ती थी। पत्नियों को यज्ञादि में अपने पति के साथ मंत्रोच्चारण भी करना पड़ता था। वहीं दूसरी ओर स्मृति ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय स्त्रियों के शिक्षा प्राप्ति अधिकार का हनन किया गया। मनु व याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों को शूद्रों की श्रेणी में स्थान दिया है और उन्हें वेद अध्ययन से रोका है। मनु, गौतम आदि ने स्त्रियों को अस्वतंत्र माना है। इनके विचार में स्त्रियों के विवाह संस्कार उपनयन की तरह हैं और पति सेवा गुरुकुल के समान। यहीं से स्त्रियों की परनिर्भरता आरंभ होती है। यह भी ज्ञात है कि उस समय सहशिक्षा का पूर्णतः निषेध था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार नहीं था।

भारत में निराश्रित एवं परित्यक्त महिलाएँ प्राचीन काल से अधिक संख्या में रही हैं। विधवा विवाह को कानून के अंतर्गत मान्यता दी गई है लेकिन व्यवहार में विधवाओं के पुनर्विवाह को सामान्य सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पाई है। देश में महिलाएँ खेतों और कुटीर उद्योगों में सदियों से काम करती आई हैं लेकिन औद्योगिकीकरण के प्रसार से उन्हें कारखानों, बागानों, खानों, कार्यालयों एवं अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं सेवाओं में रोजगार के पर्याप्त अवसर मिले हैं। इसके बाद भी दोहरे श्रम की समस्या, निम्न मजदूरी की समस्या, कार्य की कठिन दशाएँ, प्रसूति से उत्पन्न समस्याएँ, आवास व यातायात, मनोरंजन के अभाव, सामाजिक सुरक्षा की समस्याओं से उन्हें दो-चार होना पड़ता है। अनैतिक पतन की शिकार स्त्रियों को कई प्रकार की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज ऐसी स्त्रियों को स्वीकार नहीं करता है।

पुरुष प्रधान समाज होने के कारण आरंभिक काल से जेंडर असमानता यथा- शोषण, उत्पीड़न, पक्षपात और दुराग्रहों का सामना महिलाओं को करना पड़ता है। यह असमानता परिवार से लेकर सरकारी नीतियों में भी दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक समाज में भी ऐसी स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। हमारा समाज अपनी परंपराओं को तोड़ने हेतु तैयार नहीं है। नारी के सबल रूप को पुरुष प्रधान समाज मन मस्तिष्क से स्वीकार नहीं कर सका है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद महिलाओं के खिलाफ सामाजिक पूर्वाग्रह कायम

है। वैश्विक स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था जैसे-जैसे सुदृढ़ होती गई, महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष लाने की मुहिम में भी तेजी आती गई। विधि एवं न्याय के समक्ष समानता, लोक सेवाओं में नियुक्ति हेतु समान अवसर, विचार की अभिव्यक्ति, निवास, रोज़गार आदि की स्वतंत्रता, पारिवारिक संपत्ति में हिस्सेदारी, निर्णयन के प्रत्येक स्तर पर समानता आदि के मामलों में महिलाओं को न केवल पुरुषों के बराबर लाया गया वरन जहाँ कहीं आवश्यकता थी, वहाँ उनके सम्मान एवं निष्ठा की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए। महिलाओं के अधिकारों की प्राप्ति के क्षेत्र में भारत में भी संघर्ष की कहानी लंबी है। महिलाओं में शिक्षा के बढ़ते स्तर ने इसमें योगदान दिया है। एक आंदोलन के रूप में महिला सशक्तीकरण की शुरुआत यू.एन.ओ. द्वारा 8 मार्च 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस से मानी जा सकती है। 1985 में “अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन” का आयोजन नैरोबी में किया गया तथा 1975-1985 के दशक को “महिला दशक” के रूप में मनाया गया। भारत में महिला सशक्तीकरण का बीजारोपण भारतीय संविधान के निर्माण के साथ ही हो गया था। महिलाओं के सशक्तीकरण की प्रक्रिया में चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद से उल्लेखनीय रूप से परिवर्तन आया है। महिलाओं के विकास के मुद्दे का स्थान महिलाओं के सशक्तीकरण ने ले लिया है। पंचायती राज व्यवस्था एवं नगरीय निकायों में एक तिहाई पद का आरक्षण इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है।

जनवरी 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना सदियों से पिछड़े, शोषित व उपेक्षित नारी के विकास पर बल देने के उद्देश्य से की गई है। भारत में महिलाओं के प्रति की जाने वाली हिंसा का स्वरूप व्यापक है और इसका एक बड़ा हिस्सा घरेलू हिंसा के रूप में पारंपरिक रूप से समाज में दिखाई पड़ता है। इसी प्रयास के अंतर्गत घरेलू हिंसा अधिनियम-2005 को संदर्भित किया जा सकता है।

26 अक्टूबर, 2006 से यह कानून पूरे भारत में लागू है। इसके अंतर्गत महिलाओं के प्रति की जाने वाली घरेलू हिंसा में शारीरिक मारपीट ही नहीं अपितु उत्पीड़न, यौनिक, मौखिक, भावनात्मक व आर्थिक पक्ष के साथ-साथ महिला को घर से निकालना या निकालने की धमकी देने को भी घरेलू हिंसा में सम्मिलित किया गया है। इसके लिए सरकार ने कानूनी रूप से महिला को अपने पैतृक मकान एवं ससुराल के मकान के एक भाग में रहने का अधिकार भी दिया है, भले ही किसी महिला को अपने वैवाहिक गृह में स्वामित्वाधिकार हो या नहीं, उसे वहाँ रहने का अधिकार किसी मजिस्ट्रेट के द्वारा प्राप्त किया जा सकेगा। यह कानून एक प्रगतिवादी कदम है। अधिनियम यह व्यक्त करता है कि यदि प्रशासन प्रतिबद्धता से कार्य करता है तो महिला उत्पीड़न कम किया जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक विविध क्षेत्रों में महिलाओं की उपलब्धियाँ एवं तरक्की बढ़ी है। महिलाओं ने देश के हर शिखर पर अपने झंडे बुलंद किए हैं

चाहे वे राष्ट्रपति के रूप में हो या पेप्सिको की सी.ई.ओ. इंदिरा नुयि अथवा किरन बेदी। अब आंसुओं का दौर गया। वे समाज को रचती हैं, सहेजती हैं, उनकी आँखों ने खुद के लिए सपने देखना सीख लिया है और उसे हकीकत में बदल रही हैं क्योंकि अब उनकी आवाज है :

न सहेंगे न झुकेंगे, न रुकेंगे मंजिल आने तक ।
आगे बढ़ेंगे लेकर रहेंगे, न छोड़ेंगे अपना हक ॥

फिर भी संवैधानिक प्रावधान, महिला कानून एवं महिलाओं की योजना के बावजूद महिलाओं के खिलाफ़ सामाजिक पूर्वाग्रह कायम है। आधी आबादी की स्थिति में सुधार के बगैर बेहतर समाज की कल्पना संभव नहीं है। वैचारिक क्रांति के द्वारा ही महिला सशक्तीकरण के आंदोलन का अपने मुकाम तक पहुँचने का प्रयास सफल हो सकता है।

क्या अच्छा दिन है?

सरोज यादव*

भारतीय समाज में सदियों से स्त्री-पुरुष एवं बालक-बालिकाओं में भेदभाव किया जाता रहा है। संवैधानिक समानता के बावजूद यह भेदभाव आज भी जारी है जो बच्चों के जन्म, उनकी देखभाल के तरीके, शिक्षा, रीति-रिवाज व रोजगार के अवसर आदि में परिलक्षित होता है। सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों द्वारा किए गए प्रयासों के परिणाम स्वरूप स्त्री-पुरुष समानता के प्रति लोगों की सोच में धीरे-धीरे बदलाव आ रहा है और आज लोग बालिकाओं की शिक्षा के प्रति सजग हो रहे हैं। संवाद के रूप में लिखा गया यह लेख भारतीय परिवारों में बालिकाओं के प्रति बदलती सोच की एक झलक प्रस्तुत करता है।

मैं अपने घर में सबसे बड़ी हूँ। मेरी एक छोटी-सी बहन है। हमारे घर में नन्हा-सा भाई हुआ है। घर में थाली बजाई जा रही है। काश कि मेरे माता पिता हमारे जन्म पर भी इतनी ही खुशी मनाते जितनी कि मेरे भाई के जन्म पर मना रहे हैं। मैं एक कोने में बैठी सोच रही थी कि बेटी पैदा हो जाने पर ऐसा क्या हो जाता है जो सारे घर में खामोशी छा जाती है। यही नहीं बेटी पैदा करने वाली उस माँ को खाने-पीने को भी कम दिया जाता है जबकि बेटा पैदा करने वाली माँ की खूब

खातिर होती है। मेरा भाई बड़ा होने लगा, हम दोनों खेलने लगे। देखते-ही-देखते मेरा भाई जो मेरे से छोटा था उसे स्कूल में डाल दिया। मैं सोचने लगी, उसके लिए नया बस्ता, नई किताबें, नए जूते, नयी स्कूल ड्रेस भी आ गई। मेरी माँ उन सबको देख कर फूली नहीं समा रही थी। स्कूल जाने के पहले दिन जैसे ही मेरा भाई तैयार हुआ तो मेरी दादी व मेरे पिताजी के मुँह से निकला, क्या सुन्दर लग रहा है। हमारा बेटा बड़ा होकर एक दिन जरूर अफसर बनेगा।

*प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, डी.ई.एस.एस., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

तभी माँ ने आवाज़ लगाई, नीलम भाई को दही व चीनी खिला। पहले दिन स्कूल जा रहा है। मैं दौड़कर दही व चीनी लेने चली गई। मैं कुछ देर के लिए भूल गई थी कि स्कूल में मैं नहीं मेरा छोटा भाई जा रहा है। मेरा छोटा भाई अमन दही खाने लगा। मैं कभी उसकी कमीज़ को हाथ लगाकर देखूँ, कभी उसके बस्ते को अपनी पीठ पर लगा कर देखूँ। तभी रिक्शे की घंटी बज गई और अमन दौड़कर रिक्शे में बैठ गया। मेरा सारा दिन उत्साह में बीत गया और मैं इंतज़ार करने लगी अमन के स्कूल से आने का। जैसे ही मेरा भाई स्कूल से दोपहर में आया, माँ रसोईघर में उसके लिए खाना बनाने चली गई व एक थाल में ताज़ी दही व चपाती रखकर ले आई। मैंने माँ से कहा मेरा खाना कहाँ है। मैंने तो सुबह से कुछ नहीं खाया और तुमने मुझसे पूछा भी नहीं कि खाना खाया या नहीं। माँ ने मुझे कहा कि तू तो घर में ही थी खाने को किसी ने मना किया था। जा रसोई में से लेकर खा ले। रसोई में सुबह की बनी रोटी व छाछ रखी हुई थी मैंने पूछा सब्जी तो है नहीं। उस पर दादी माँ ने कहा “सब्जी तो तेरे पिताजी व भाई को दे दी। खा ले छाछ के साथ कौन-सा तूने हल चलाना है या नौकरी करनी है। लड़कियों को ज़्यादा चटोरा नहीं होना चाहिए जो बचा-खुचा मिल जाए खा लेना चाहिए।” मैं दो रोटी और छाछ का गिलास लेकर आंगन में चारपाई पर बैठकर खाने लगी। मुझे दुख इस बात का नहीं था कि मुझे सब्जी नहीं मिली, मुझे दुख इस बात का था कि

लड़कियों के साथ ऐसा क्यों होता है? कभी यह कहकर कि लड़की पराया धन है कभी यह कहकर कि अच्छा खाएगी तो जल्दी बड़ी हो जाएगी, जल्दी शादी करनी पड़ेगी और कभी लोगों की नज़र में ना आए। बहुत बार आधे पेट या रूखा भोजन ही नसीब होता है।

अमन दूसरी कक्षा में हो गया, मैं उसकी किताबों को देखती और मन-ही-मन सोचती कि काश मेरी माँ व पिताजी मेरी भावनाओं को समझते और मुझे भी स्कूल जाने देते। मैंने बहुत बार अपने पिताजी से स्कूल जाने की ज़िद की लेकिन हमेशा की तरह एक ही जवाब दे देते “लड़कियों का काम घर-गृहस्थी को संभालना है। तुम अपनी माँ के साथ घर के कामों में हाथ बटाओ, कुछ काम सीखो, नहीं तो ब्याह के बाद हमें ही उलाहना मिलेगा कि तुम्हारे माँ-बाप ने कुछ सिखाया था या नहीं।”

मैं सुबह से शाम तक छोटे बहन-भाईयों की देख-रेख व माँ के साथ घर, खेत का काम करते-करते बड़ी होने लगी। एक दिन मेरे मामा मामी गर्मियों में हमारे घर आए। उनके साथ उनकी दोनों लड़कियाँ भी थीं। बहुत दिनों के बाद हमारे घर आए थे। मैं तो उनको याद के हिसाब से पहली बार देख रही थी। सबसे ज़्यादा खुश मैं ही थी क्योंकि मुझे हमउम्र सहेलियाँ मिल गईं। माँ भी कई बार नीना जो कि मामा की बड़ी लड़की थी उसके बारे में बातें करती थीं।

एक दिन नीना अपनी किताब से मुझे ज़ोर-ज़ोर से एक कहानी सुना रही थी और मैं मूक बनी

उस कहानी में खोई हुई थी। नीना की छोटी बहन चुनू व मेरा भाई अमन भी बैठा था हम सब कहानी सुनने में इतने लीन थे कि पता ही नहीं चला कि माँ कब से वहाँ खड़ी थी। यह तो मामी ने जब माँ के कंधे पर हाथ रखा तब माँ चौंकी व हम सब भी उधर देखने लग गए।

“क्या देख रही थी दीदी” रमा मामी ने कहा “मैं देख रही थी कि तुम्हारी दोनों लड़कियाँ हैं और लड़कियों को पढ़ा भी रही हो” माँ ने कहा।

“रमा, क्या तुम्हें पुत्र की कमी नहीं खलती। परिवार में कम-से-कम एक पुत्र तो होना ही चाहिए। पुत्र के बिना स्वर्ग में भी स्थान नहीं मिलता। पुत्र ही बुढ़ापे में माँ-बाप का सहारा होता है। अब तो सुना है डॉक्टर पेट में ही बता देते हैं कि होने वाला बच्चा लड़का है या लड़की” माँ ने कहा। “अरे दीदी, यह तो सरासर पाप है। मुझे भी छोटी के समय माताजी व पड़ोस की ताई ने बहुत कहा। यहाँ तक की ताने मारने भी शुरू कर दिए। वंश चलाने की दुहाई देने लगे। पर मैं और आपके भाई विचलित नहीं हुए। आज समय बहुत बदल गया है। लड़कियाँ लड़कों से आगे निकल रही हैं। मैं ऐसे बहुत से परिवारों को जानती हूँ जहाँ लड़कियाँ पढ़-लिख कर अपने पैरों पर खड़ी हैं। अपने बूढ़े, माँ-बाप की देखभाल लड़कों के साथ रह रहे माँ-बाप से अच्छी तरह कर रही हैं।”

“हम अंधविश्वासों से घिरे रहते हैं लड़कियों को पराया धन समझकर ना पढ़ाते हैं ना अच्छा खाना खिलाते हैं। एक और अपराध जो लाखों बच्चों

और खासतौर से लड़कियों के साथ किया जाता है वो है कम उम्र में शादी। जल्दी माँ बन जाती हैं। वो भी कई बच्चों की माँ। कई बच्चे तो जन्म के समय या जन्म के बाद मर जाते हैं और कई बार लड़के की चाह में गिरा दिए जाते हैं, विशेषकर लड़कियाँ। जल्दी-जल्दी बच्चे होने से ये लड़कियाँ कम उम्र में बीमारियों, परेशानियों व लाचारियों के दुष्चक्र में जिन्दगी भर पिसकर रह जाती हैं।” मामी एक ही साँस में इतना सब कुछ कह गईं। और माँ मामी की तरफ़ देखते-देखते पता नहीं कहाँ खो गईं। माँ को एक-एक शब्द लग रहा था कि जैसे उसकी अपनी बीती सुना रही हैं।

आप सोचो कल को जब अमन पढ़-लिखकर बड़ा अफ़सर बनेगा तो वह चाहेगा कि उसकी होने वाली पत्नी भी पढ़ी लिखी, स्वस्थ व सुंदर हो। और अगर सभी लड़कियों को नहीं पढ़ाएंगे तो पढ़ी-लिखी पत्नियाँ कहाँ से आएँगी। जरा सोचो, पढ़ी-लिखी लड़की शादी करके दूसरे घर चली भी गई तो क्या। वे जहाँ भी जाएँगी रोशनी फैलाएँगी। किसी और की पढ़ी-लिखी बेटी हमारे घर में बहू बनकर आएगी।

हमारी बेटियों का जीवन, लालन-पालन, पढ़ाई-लिखाई काफ़ी हद तक हम माँओं पर भी निर्भर करता है। हमारे परिवार में शांति व सुख रहे यह हमारे ऊपर बहुत निर्भर करता है। घर के हर सदस्य को उसकी ज़रूरत के हिसाब से पहनने खाने व पढ़ने के अवसर दिए जाएँ। अगर बेटी कमज़ोर, बीमार, अनपढ़ व मोहताज रहेगी तो परिवार पर ही उसका बोझ पड़ेगा। अक्लमंदी

तो इसी में है कि घर का हर सदस्य प्रतिभावान बने। दीदी क्या कोई माली चाहता है कि उसके पेड़ पर आधे फल अच्छे व आधे कच्चे रहें। क्या आप चाहती हैं कि आपके खेत की आधी फसल अच्छी और आधी खराब रहे। तो फिर यह भेदभाव बच्चों के साथ क्यों?

माँ ने कहा “रमा तुमने तो मेरी आँखें खोल दीं परन्तु नीलम तो बड़ी हो गई है” कोई बात नहीं तुम सिमी को तो भेजो। नीलम को नज़दीक के स्कूल में जो रात की क्लास होती है उसमें भेजो। अचानक ही मेरे मुँह से निकला वाह, क्या अच्छा दिन है।

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

NORTH EAST REGIONAL INSTITUTE OF EDUCATION

(National Council of Educational Research and Training)

Umiam, Shillong-793103, Meghalaya

NATIONAL SEMINAR ON 'NEW PERSPECTIVES OF HEALTH AND PHYSICAL EDUCATION IN SCHOOL'

CALL FOR PAPERS FOR PARTICIPATION

A national seminar on '**New Perspectives of Health and Physical Education in School**' is being organised by North East Regional Institute of Education, National Council of Educational Research and Training, Umiam-793103, Meghalaya for two days from 19-20 February 2014. Interested participants are requested to send their abstracts (500 words) and full papers (5000 words) to the Coordinator. The abstracts and full papers, that are to be sent in both hard and soft copies, should be related to the subthemes and will be published as books of seminar proceedings. On request from the presenting author, local free hospitality with TA will be provided. No registration fee is required. Last dates for —

- **Abstract submission: 15 November 2013**
- **Full paper submission: 24 December 2013**
- **Participation confirmation: 31 December 2013.**

*For further details, please see websites
www.nerie.nic.in and www.ncert.nic.in*